लघुकथा विशेषांक

अभिनव इमरोज़

Abhinav Imroz

प्रेम-प्रोत्साहन-प्रतिभा का प्रतीक

ISSN 2321-1105

वर्ष–13, अंक–11, नवम्बर 2024

Website : abhinavimroz.page

अतिथि संपादक
डॉ. सन्दीप तोमर

अतीत की आग़ोश में...

मेरा घर कहाँ है ?

डॉ. रेनू वर्मा,
वर्मा हॉस्पिटल,
लुधियाना
मो. 9815300544

जहाँ बसी हैं सैकड़ों नादानियाँ
कभी सुकून कभी परेशानियाँ
करते थे सब मनमानियाँ
वही तो मेरा घर था

दो फ़रिश्तों ने जिसे सजाया था
ख़ुद सींच कर गुलिस्ताँ बनाया था
उनकी उम्र भर का सरमाया था
वही तो मेरा घर था

हर ईंट पर खुदा था उनका ही नाम
दर ओ दरवाज़ा हो या हो सर ए बाम
जन्नत से प्यारा था वो मक़ाम
वही तो मेरा घर था

महज़ ज़मीं नहीं यह गोद थी माँ की
पापा का दिल जैसे चादर आसमाँ की
दुआएँ ही दुआएँ थीं उन मेहरबाँ की
वही तो मेरा घर था

हाए वो बचपन मुजस्समा वो माज़ी का
मज़ा ही कुछ और था मेहमांनवाज़ी का
रूठना और झट से मान जाने वाली बाज़ी का
वही तो मेरा घर था

ढूंढे से भी मिलती नहीं हैं वो सौग़ातें
कहाँ रहे वो दिन कहाँ गईं वो रातें
न ही वो कहकहे न ही रही वो बातें
कहाँ वो मेरा घर है
क्या कोई मेरा घर है ?

मेरी यह हार्दिक इच्छा थी कि मैं अपने पाठकों को मात्र तथ्यात्मक ही नहीं बल्कि भावानुभूत करने वाली लघुकथाएँ पेश कर सकूँ । तो तभी मुझे डॉ. सन्दीप तोमर का ध्यान आया और मैंने फोन मिला कर उन्हें लघुकथा विशेषांक के सम्पादन के लिए अनुरोध किया जो कि उन्होंने स्वीकार कर लिया। इस अंक को पढ़ने के बाद आप भी महसूस करेंगे कि मैंने केवल उन्हें ही क्यों यह दायित्व सौंपा ?

आवरण पृष्ठ पर जूगनूँ और वटवृक्ष का बौनसाए अपनी लघुता और सौंदर्य के प्रतीक हैं और दूसरे पृष्ठों पर (प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति) लघुकविताएँ हैं।

डॉ. सन्दीप तोमर का सादर आभार

संपादक, देवेन्द्र कुमार बहल, अभिनव इमरोज एवं साहित्य नंदिनी

प्रकाशन कार्यालयः
बी 3/3223 वसंत कुंज,
नई दिल्ली.110070
दूरभाष : 09910497972
e-mail: abhinavimroz@gmail.com
dk.bahl1942@gmail.com,
facebook: facebook.com/abhinavimroz
website : abhinavimroz.page

Paytm

Scan & Pay

D.K.BAHL
9910497972@uboi

Bank Account Details

डी. के. बहल, A/c No. 520101222134565
युनियन बैंक, वसंत कुंज, नई दिल्ली 110070
IFSC Code : UBIN0905381

इस अंक में

1.	सन्दीप तोमर	*अतिथि संपादकीय*	4
2.	सन्दीप तोमर	*आलेख*	6
3.	चंद्रेश कुमार छतलानी एवं पूनम चौहान	*लघुकथा*	9
4.	निरुपमा सिंह एवं शालिनी कपूर	*लघुकथा*	10
5.	ज्योति स्पर्श एवं भावना भट्ट	*लघुकथा*	11
6.	अशोक भाटिया	*संस्मरण*	12
7.	अशोक भाटिया	*लघुकथाएं*	13
8.	विरेंदर 'वीर' मेहता	*आलेख*	14
9.	मनोरमा पंत	*पुस्तक समीक्षा*	17
10.	डॉ. मिथिलेश दीक्षित एवं संतोष श्रीवास्तव	*साक्षात्कार*	20
11.	सुरेंद्र कुमार अरोड़ा	*लघुकथा*	23
12.	अनिल शूर आज़ाद एवं रशीद ग़ौरी	*लघुकथा*	24
13.	पूजा अग्निहोत्री एवं डॉ. प्रद्युम्न भल्ला	*लघुकथा*	25
14.	पवित्रा अग्रवाल एवं डॉ. संजय रॉय	*लघुकथा*	26
15.	सूरज प्रकाश एवं सरला मेहता	*लघुकथा*	27
16.	पूनम चंद्रलेखा	*लघुकथा*	28
17.	डॉ. वर्षा महेश 'गरिमा' एवं डॉ. सुनीता फड़नीस	*लघुकथा*	29
18.	मार्टिन जॉन **रश्मि 'लहर'**	*लघुकथा*	30
19.	गीता चौबे गूँज	*दोहे*	31
20.	नेहा नरूका	*लघुकथा*	32
21.	शील निगम	*लघुकथा*	33
22.	पंकज शर्मा	*लघुकथा*	34
23.	विजयानन्द विजय	*लघुकथा*	35
24.	डॉ. शबनम आलम	*लघुकथा*	36
25.	ज्योत्स्ना कपिल	*आलेख*	37
26.	अनिता रश्मि	*आलेख*	40
27.	दिलीप कुमार	*लघुकथा*	42
28.	सारिका भूषण	*लघुकथा*	43
29.	एकता अमित व्यास	*लघुकथा*	44
30.	ओमप्रकाश क्षत्रिय 'प्रकाश'	*लघुकथा*	44
31.	उज्ज्वला तुपसुंदरे	*लघुकथा*	45
32.	सन्दीप तोमर	*लघुकथा*	46

संपादन–संचालन अवैतनिक/रचनाओं की जिम्मेदारी लेखकों की प्रकाशित लेखादि में अभिव्यक्त विचारों से प्रकाशक–सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। समस्त विवादों के लि, न्यायालय क्षेत्र दिल्ली।

स्वत्वाधिकारी मुद्रक एवं प्रकाशक श्री देवेन्द्र कुमार बहल की ओर से डिकोरपेक इण्डिया प्रा. लि., 291–डी, सेक्टर–6, आई.एम.टी. मानेसर, गुरुग्राम, हरियाणा से छपवा कर बी–3/3223 वसंत कुंज, नई दिल्ली – 110070 से प्रकाशित। संपादक, देवेन्द्र कुमार बहल

अतिथि संपादकीय

सन्दीप तोमर

मेरा लेखन कुल जमा 24 वर्षों की साधना का परिणाम है । इतने ही वर्ष लघुकथाएँ लिखते हुए हो गए हैं । मैंने लेखन में कभी किसी को अपना आधिकारिक गुरु नहीं बनाया । अलबत्ता लिखने से ज्यादा पढ़ने को तवज्जो देता रहा । जब लघुकथाएँ लिखनी शुरू की तो तमाम बड़े लघुकथा लेखकों को पत्रिकाओं में पढ़ता रहा। ये इस विधा को समझने का मेरा अपना तरीका था। मुझे लगा कि गद्य की किसी भी विधा में किस्सागोई जरूरी है। किस्सागोई सीखने में मुझे बंगाली साहित्यकार शरदचंद्र (जो बांग्ला से ज्यादा हिंदी में प्रसिद्ध हुए) से मदद मिली। अपने शुरुआती दौर में मैंने पाया कि जब तक लघुकथा के मानक नहीं जाने, तब तक मेरी कलम से बेहतर रचनाओं ने जन्म लिया। और बिना जाने वे रचनाएँ मानकों पर खरी उतरती रही। लेकिन ज्यों ही इस विधा पर लोगो के मत और आलेख पढ़ने शुरू किए, तभी से गड़बड़ की स्थिति पैदा होने लगी।

एक बात निर्विवाद रूप से सत्य है कि विषय की नवीनता और प्रयोधर्मी होना किसी भी विधा के संवर्धन के लिए आवश्यक तत्व है। जो प्रयोगधर्मी नहीं होते, वे किसी भी विधा का अधिक भला नहीं कर पाते। यूँ लघुकथाओ में अभी जो लेखन हो रहा है, वह अधिकांशत: बहुत सतही हो रहा है। यानी विधागत अनुप्रयोग न के बराबर। बात आती है कि लघुकथा विधा की अवधारणा क्या है? इसका इतिहास क्या है? क्यों इसे बड़ी मुख्यधारा की पत्रिकाएँ फिलर के रूप में प्रयोग करती रही? माना जाता है कि हिंदी साहित्य में लघुकथा नवीनतम् विधा है । लेकिन यह बात पूर्ण सत्य नहीं है। पौराणिक कथाओं, जातक कथाओं से लेकर आधुनिक साहित्य तक लघुकथा की उपस्थिति दर्ज होती रही है। हिंदी की प्रथम लघुकथा के बारे में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं । लघुकथा का प्रारंभ कुछ लोग छठे दशक के आसपास भी मानते रहे हैं। जिस पर अनेक लघुकथा आलोचक लिखते रहे हैं। बहराल इतिहास कुछ भी रहा हो लेकिन ये बात निर्विवाद रूप से सत्य है कि लघुकथा ने अनेक मंजिले पार कर अपना वर्तमान रूप पाया है।

अवधारणात्मक रूप से लघुकथा एक छोटी कहानी या गद्य कथा का एक टुकड़ा है जिसे आमतौर पर एक बैठक में पढ़ा जा सकता है। यह एकल प्रभाव या मनोदशा को उजागर करने के इरादे से एक आत्म-निहित घटना या जुड़ी घटनाओं की श्रृंखला पर केंद्रित होती है। लघुकथा में लेखक एक बडी कहानी के 'थीम' को छोटे रूप में व्यक्त कर खत्म कर देता है। यह उद्देश्य निरपेक्ष नहीं होती। वह अपने उद्देश्य को बिजली की कौंध के समान अभिव्यक्त करती है । कुछ विद्वान किसी भी साहित्यिक रचना में उपदेश से परहेज करने की नसीहत देते हैं। असल में उपदेश भी एक तरह का उद्देश्य ही होता है । इन कथाओं में किसी न किसी दृष्टांत के द्वारा कथ्य की अभिव्यक्ति की जाती है।

किसी भी विधा की किसी भी रचना में शीर्षक का एक विशिष्ट स्थान होता है। किसी भी रचना को शीर्षक ही प्रथम दृष्टि में पाठक को पढ़ने हेतु उत्प्रेरित करता है। रचना का शीर्षक ऐसा होना चाहिए जो अपनी सार्थकता सिद्ध करने के साथ-साथ आकर्षक, विचित्र और जिज्ञासा उत्पन्न करने वाला हो कि पाठक तुरंत उसे पढ़ना आरंभ कर दे। लघुकथा में शीर्षक का स्थान किसी अन्य विधा से कहीं अधिक महत्वपूर्ण होता है। कितनी ही रचनाएँ पढ़ने को मिलती हैं जिनमें शीर्षक अंत तक का खुलासा प्रथम पंक्ति में ही कर देता है, ऐसी रचनाएँ शीर्षक के कारण ही अपना प्रभाव आरंभ में ही खो देती हैं, इसलिए शीर्षक ऐसा हो जो अंत तक जिज्ञासा बनाए रखने में भी सफल हो।

यूँ तो हर रचना में वातावरण और शैली का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है, लेकिन लघुकथा में वातावरण और शैली को अधिक तवज्जो न देकर इनको यदि गौण मान लिया जाए तो लघुकथा के प्रमुख तत्व वस्तु, संवाद, चरित्र और सम्प्रेषणीयता का महत्व अधिक होता है। एक तो इसका आकार छोटा होता है, जिसके कारण वर्णन और विश्लेषण की गुंजाइश कम होती है, दूसरे संकेतात्मकता और वेधकता पर यह कहानी की अपेक्षा अधिक ध्यान देती है। लघुकथाओं में बहुत कुछ राह सुझाने का भाव अधिक होता है, जबकि छोटी कहानियाँ पाठकों के सामने जीवन का एक संक्षिप्त चित्र प्रस्तुत करती हैं।

अक्सर देखा गया है कि छोटी सी घटना या छोटा सा संकेत विस्तार से अधिक प्रभावशाली होता है। लघुकथा का सीधा संबंध कहानी के इसी लघु सांकेतिक स्वरूप से है। इसमें संदेह नहीं कि

कुछ आचार्य 'लघुकथा' को छोटी कहानी मानकर दोनों में अभेद की कल्पना करते हैं किन्तु लघुकथा एक स्वतंत्र विधा है जिसका 'कहानी' से भेद उसी प्रकार का है जिस प्रकार 'कहानी' का 'उपन्यास' से। मेरा स्पष्ट मानना है कि यदि उपन्यास से अनावश्यक तत्व हटा दिये जाये तो वह कहानी है और अगर कहानी से अनावश्यक तत्व हटा दिये जाएँ तो वह लघुकथा है।

'कहानी' में सभी तत्वों की योजना की जाती है किन्तु लघुकथा में यह संभव ही नहीं है। लघुकथा की मुख्य विशेषताएँ हैं- संकेतात्मकता, वेधकता और अतिकल्पना।

आइये लघुकथा की विशेषताओं को जानने का प्रयास करते हैं-

1. कथानक

लघुकथा का कथानक अत्यंत सूक्ष्म होता है। चूंकि ऐतिहासिक-सामाजिक अंतर्वस्तु कथानक की रीढ होती है, इसलिए लघुकथा में इसका प्रवेश सूक्ष्मतम विधानों में ही होता है। उसका आदि, मध्य या अंत नहीं होता। उसमें घटनाओं के विस्तार का अभाव होता है और कहानी के समान संघर्ष की तीव्रता भी नहीं होती।

2. पात्र-योजना

लघुकथा में एक-दो पात्र संभव है किन्तु उनके चरित्र-चित्रण के लिए उसमें कोई अवकाश नहीं होता। मानव के साथ अथवा स्थान पर पशु-पक्षी भी हो सकते हैं।

3. कल्पना की उड़ान

'कहानी' के समान 'लघुकथा' में यथार्थ घटनाओं की बंदिश नहीं होती। उसमें यथार्थ के अतिरिक्त कल्पना की उन्मुक्त उड़ान के द्वारा कथ्य की अभिव्यक्ति की जाती है। राजा, रानी, पशु-पक्षी आदि काल्पनिक पात्र और काल्पनिक घटनाओं पर आधारित रचना भी संभव है।

4. शैली

लघुकथा का शैली रूप में ही सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है. संकेतात्मकता और वेधकता उसकी शैली के विशिष्ट गुण होते हैं। संक्षेप से संक्षेप में बात कहने की सामर्थ्य संकेतात्मक शैली के ही द्वारा उत्पन्न हो सकती है।

5. उपदेशात्मकता

लघुकथा उपदेशात्मक होती है। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उपदेश अवश्य निहित रहता है।

6. संक्षिप्तता

लघुकथा का कलेवर उसकी लघुता में ही होता है। अतएव उसका संक्षिप्त होना अनिवार्य माना जाता है।

7. उद्देश्य

लघुकथा उद्देश्य निरपेक्ष नहीं होती। वह अपने उद्देश्य को बिजली की कौंध के समान अभिव्यक्ति देती है। उपदेश भी एक तरह का उद्देश्य ही होता है।

सामान्यत: लघुकथाएँ दो प्रकार की होती हैं:

- दृष्टांतमूलक लघुकथाएँ: इन कथाओं में किसी न किसी दृष्टांत के द्वारा कथ्य की अभिव्यक्ति की जाती है।
- अनुभवमूलक लघुकथाएँ: इन कथाओं में बिना किसी दृष्टांत के अनुभव के द्वारा मार्मिक भाव को प्रकट किया जाता है।

लघुकथा और कहानी दोनों ही कथात्मक विधाएँ हैं। कहानी को अंग्रेजी में शार्ट स्टोरी कहा जाता है और लघुकथा को शार्ट शार्ट स्टोरी। इससे केवल आकार-भेद ही ज्ञात होता है किन्तु वास्तविकता यह है कि दोनों में तात्विक भेद है।

कहानी में कथानक का आदि, मध्य और अंत होता है। उसमें घटनाओं की योजना की जाती है और कथानक में चरम विकास पाया जाता है किन्तु लघुकथा के लिए यह सब अनिवार्य नहीं है। कथावस्तु की गठन अथवा चरित्र-योजना की ओर कहानी की तरह लघुकथा का ध्यान नहीं रहता। कहानी के समान वातावरण की योजना के लिए भी लघुकथा में कोई अवकाश नहीं होता है। साथ ही लघुकथा में कथोपकथन की अनिवार्यता की जरूरत भी नहीं होती है। वैसे सुविधानुसार इसका प्रयोग किया जा सकता है। संकेतात्मकता लघुकथा की महत्त्वपूर्ण शैली है जो कहानी में कम देखने को मिलती है।

प्रस्तुत अंक में एक संतुलन बनाये रखने का प्रयास किया गया है। पाठक पढ़कर अपनी प्रतिक्रिया से अवगत अवश्य कराएँ।

आपका अपना।

सन्दीप तोमर

उत्तम नगर, नई दिल्ली,

मो. 83778 75009

लघुकथा विधान और एक मनीषी का लेखन

सन्दीप तोमर

मुजफ़्फ़रनगर, उत्तर प्रदेश के शांत, सुशील लेकिन गंभीर लेखक मनु स्वामी और उनके लेखन को पाठको के सामने प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ। आशा है पाठकों को ये आलेख पसंद आएगा

लघुकथा विधा में लेखन करने वाले नामों में एक नाम है- मनु स्वामी, यूँ उनके दो लघुकथा संकलन मेरी जानकारी में प्रकाशित हैं, पहला- "अपने आसपास" और दूसरा- "एक बार फिर"। हालाकि वे मात्र लघुकथा लेखक न होकर एक अच्छे कवि भी हैं, उनकी दो पुस्तके यथा- "मन की आँखों में" और "कोई नहीं पराया" संस्मरणों की भी प्रकाशित हुई हैं, डायरी विधा के भी एक अच्छे और सशक्त हस्ताक्षर के रूप में उन्हें जाना जाता है। उनकी डायरी "तारीखों के बीच" एक चर्चित पुस्तक रही है। उनका लेखन परंपरागत न होकर क्रांतिकारी है, यही वजह है कि असाहित्यिक रचनाकार तक की उपाधियाँ उनके विरोधियों ने उन्हें दी।

"एक बार फिर" उनका अनूठे प्रयोगो का लघुकथा संकलन है, लघुकथा में नियम-कायदे कानून, यथा- मारकता, पंचलाइन, कालखंड दोष, इत्यादि का राग अलापने वाले उनकी लघुकथाओं को इस विधा से खारिज करने में एक पल नहीं लगाएंगे, लेकिन जो लघुकथा को अनुप्रयोग के रूप में देखते हैं, जो समाज, संस्कृति, राजनीति, पर गहरी समझ रखते हैं, उन्हें ये लघुकथाएं प्रभावित करेंगी।

मितव्ययी लेखक अतिरिक्त शब्द खर्च नहीं करते। मंटो के बाद के लघुकथा लेखकों में मुझे असगर वजाहत, सुरेश वहाने, आलोक सतपुते के बाद मनु स्वामी ने प्रभावित किया। वे एक भी शब्द अतिरिक्त खर्च नहीं करते, उनकी लघुकथाएं कथ्य की डिमांड के हिसाब से आकार ग्रहण करती हैं, उनकी लघुकथाएं पढ़कर प्रतीत होता है कि लघुकथाओं पर आकार को लेकर हँगामा करने वाले कितनी फिजूल बातें करते आए हैं।

एक बात निर्विवाद रूप से सत्य है कि विषय की नवीनता और प्रयोधर्मी होना किसी भी विधा के संवर्धन के लिए आवश्यक तत्व है। जो प्रयोगधर्मी नहीं होते, वे किसी भी विधा का अधिक भला नहीं कर पाते। यूँ लघुकथाओ में अभी जो लेखन हो रहा है, वह अधिकांशत: बहुत सतही हो रहा है। यानी विधागत अनुप्रयोग न के बराबर। जो कुछ प्रयास हुए हैं उनमें मनु स्वामी का नाम लिए बिना लघुकथा का इतिहास लिखना विधा के साथ नाइंसाफी होगी। उनका भागीरथ प्रयास इसके संवर्धन के लिए महत्वपूर्ण है। उनकी लघुकथाओं में एक तरफ मंटो की पीड़ा के स्वर सुनाई पड़ते हैं तो दूसरी तरफ खालील जिब्रान की तरह की बेबाकी दिखाई पड़ती है। विषय चयन के मामले में वे असगर वजाहत की तरह निर्मम दिखाई देते हैं, वे बिना पात्रों का नाम लिए मिथक पर कलम चलाते हैं तो दूसरी ओर राजनीति पर उनकी कलम आग उगलती है। ध्यान से पढ़ने पर उनकी रचनाओं में सामाजिक विमर्श भी स्पष्ट दिखाई देता है।

हर विधा का अपना व्याकरण है, जिस भाषा में लेखक लिखता है, उसका भी अपना व्याकरण होता है, प्रत्येक लेखक को विधा के व्याकरण का ज्ञान भी अवश्यमभावी है। मनु स्वामी की विशेषता ये है कि वे लघुकथा के व्याकरण का विनिर्माण करते हैं, उनके पास अपनी भाषा है, उनका अपना व्याकरण है, वे शब्दों का संतुलित प्रयोग करना जानते हैं, उनका अपना रचना-विधान है। मुझे याद पड़ता है गुरुग्राम के यशस्वी लेखक और लघुकथा विश्वभारती के अध्यक्ष मुकेश शर्मा अनुप्रयोगो के लिए जाने जाते हैं लेकिन मनु स्वामी भी मौन होकर उसी काम को अंजाम दे रहे हैं। एक बात समंझना महत्वपूर्ण है कि लघुकथा लिखने का उद्देश्य मनोरंजन या वाह-वाह करवाना कतई नहीं है। आवश्यकता है कुछ उद्वेलित करने वाली सामाजिक सरोकारों पर आक्रामक लघुकथाएँ लिखने की। चन्द लेखक हैं, जो ये काम बड़ी बखूबी से कर रहे है, जो समसामयिक घटनाक्रमों पर पैनी नजर रखते हैं और अपने काल का प्रतिनिधित्व भी करते हैं। मनु स्वामी उसी तरह के रचनाकार

हैं। ये कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि जो काम पाश कविता के माध्यम से कर रहे थे, वही काम मनु स्वामी लघुकथा के माध्यम से करते प्रतीत होते हैं।

एक तरफ वे लेखक हैं जो लघुकथा विधा को अपना सर्वश्व दे रहे हैं तो वहीं कुछ स्थापित लेखक लकीर के फकीर बने हैं। जो लकीर के फकीर हैं वे न तो अपने लेखन में विषयों में विविधता ला पाए हैं न ही प्रस्तुतीकरण में नयापन ही ला पाए, जो लेखन वे नब्बे के दशक में कर रहे थे अमूमन वही अभी भी बदस्तूर जारी है। कुछ लेखक जो इस विधा को कुछ सार्थक रचनाएँ दे सकते थे उन्होंने प्रकाशन के दायित्व को अपना धर्म बनाना अधिक उचित समझा। और इस विधा में धन के तत्व खोजना उनकी मंशा में शामिल हो गया। उनका बार-बार ये राग अलापना कि लघुकथाओ का पाठक वर्ग सिमट रहा है, इस बात की ओर संकेत करता है कि आप सम्पादकीय दायित्व का निर्वाह कितनी शिद्दत से कर रहे हैं? यानी आपके अंदर वह सम्पादकीय दृष्टि ही कुंद है जो पाठक को कुछ उत्तम व नवीन दे सकती थी। अब तो स्वयं की किसी एक रचना पर आलेख लिखवाकर पुस्तकें निकालने का भी चलन यहाँ शुरू हुआ है, मतलब यहाँ बहुत कुछ खुद का प्रोमशन बिना हल्दी फटकरी लगे करना ही वरिष्ठजन का दायित्व मानिए। दरअसल इस प्रवृत्ति से साहित्य का हित सधता हुआ प्रतीत नहीं होता। मनु स्वामी सरीखे रचनाकारों को देखकर संतुष्ट तो हुआ ही जा सकता है कि अभी साहित्य-साधक सुप्त नहीं हुए, वे अपना काम पूरी शिद्दत से कर रहे हैं।

"अपने आसपास" में कुल जमा अड़तालीस लघुकथाएँ हैं, जबकि "एक बार फिर" में पैंतीस लघुकथाएँ हैं। जिसमें वे विभिन्न आयामाओं से हमें परिचित कराते हैं। "परित्याग" में बिना किसी मिथकीय पात्र का जिक्र किए वे लिखते हैं-"...पर अब तो कुछ भी नहीं हुआ। फिर भी ऐसा दंड ! कुछ कहा भी नहीं, क्या इतना भी साहस नहीं बचा था आदर्श राजा में?" यही इस लेखक की खूबी भी है कि बिना कुछ कहे भी वह सब कह देते हैं। ये जो अनकहा है यही लेखन की ताकत होती है। "धर्मरक्षा" में मनु स्वामी ने एक भिक्षुक और चांडाल के माध्यम से दिखाया है कि भिक्षुक जीवन-रक्षा के लिए मांस तो खा सकता है लेकिन पशु-चर्म-पात्र से जल पीने पर उसका धर्म भ्रष्ट हो जाता है। मनु स्वामी का धर्म को देखने का अपना दृष्टिकोण है, वे गुरुदक्षिणा में अंगूठा न देकर उपहास-मुद्रा अख़्तियार करना अधिक पसंद करते हैं। धर्म का ही एक अन्य रूप "काजल की कोठारी" में भी दिखाई देता है, महापुरुष का नाविक कन्या के समक्ष प्रस्ताव रखना और दुर्गन्धा कन्या के सभी वचन निष्प्रभावी होना महापुरुष को काजल की कोठरी तक ले जाता है। यह रचना शीर्षक के महत्व को समझने के लिए भी पर्याप्त है। "पलायन" रचना में भी धर्म पर सही चोट की गयी है। उन्होने "धर्म" शीर्षक से भी लघुकथा लिखी-

किले की प्राचीर से देवी-उपासक रानी ने देखा, शत्रु सैनिकों के मस्जिद में छिपे होने के कारण उसे उम्मती तोपची ने उड़ा दिया। एक मंदिर में भी शत्रु छिपे हुए थे, पर इस बार तोपची रुक गया, तो तमककर रानी ने आगे बढ़कर गोला दाग दिया।

धर्म का यह रूप सबसे विद्रुप है, हर धर्म को समान दृष्टि से देखने का रानी का नजरिया चकित करने वाला है। इस तरह की रचना मनु स्वामी जैसे विद्रोही स्वभावी व्यक्ति की कलम से ही निकल सकती हैं।

ऐसा भी नहीं कि मनुस्वामी सिर्फ मिथकीय पात्रों पर ही कलम चलाने में सक्षम है, उनके पास व्यंग्य शैली भी है, "कामना" रचना से वे जाति-व्यवस्था पर प्रहार करते हैं तो "सती" नामक लघुकथा में उन्होने समाज-व्यवस्था पर करारा व्यंग्य किया है- "धीरे से उसे गिलास-भर तीखा पेय पिला दिया गया। अर्ध-मूर्च्छित दशा में ही उसे दुल्हन सा सजा दिया गया। आग की लपटे उठने लगी। निर्जीव देह सुलगने लगी। एक ही झटके में उसे भी सुलगती देह पर बिछा दिया गया। छटपटाकर उसने बाहर निकलना चाहा, तो उस पर नारियलों की बरसात कर दी गई। ढ़ोल-नगाड़े बजने लगे। दोनों की देह एकरूप हो गयीं और जय-जयकार से आकाश गूँजने लगा। इसी तरह वे "रक्षक" लघुकथा पर पुलिसिया व्यवस्था पर भी कटाक्ष किया है। "

मनुजी का हिन्दी भाषा पर जितना अधिकार है, उतना ही अधिकार वे कौरवी भाषा पर भी रखते हैं, "तरक्की" कौरवी की एक करारी रचना है, कौरवी का तेवर तरक्की से एकदम मेल खाता है।

मनु जी की रचनाएँ पढ़कर उनके सामाजिक दायित्व भी समझे जा सकते हैं, उनकी पैनी दृष्टि स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की पड़ताल भी बड़ी शिद्दत से करती है। "सफर" रचना में वे स्त्री-पुरुषो के बीच पनपे सदियों पुराने अविश्वास पर कलम चलाते हैं, स्त्री-पुरुषों का यह अविश्वास सदियों पुराना है, धर्म ग्रन्थों में भी पुरुष छलना ही रहा है। एक संवाद देखिये-"...आपका साथ मिला तो उन लफंगों से पीछा छूटा ही, सफर भी आसान हो गया। प्रोफेसर कहने लगे, 'यदि मैं भी उनके जैसा होता तो?' धीमे से मुस्कराकर महिला ने

कहा, ‘सर, एक लफंगे से निपटना हम महिलाएँ घर में और घर से बाहर भी अच्छी तरह से जानती हैं। ‘...”

मनु स्वामी की सोच पूर्णत: वैज्ञानिक है, वे “नास्तिकता” रचना के माध्यम से बताते हैं कि क्षद्म विज्ञान की तरह क्षद्म नास्तिकता का भी खूब बोलबाला है।

उनकी रचनाओं में बिम्बात्मकता को भी बखूबी देखा जा सकता है। उनकी “सृजन” रचना में बढ़िया बिम्ब उभरा है। ये रचना आधुनिकता के नाम पर रिश्तों के खुलेपन पर कटाक्ष करती है। रचना देखिये- भँवरा गुनगुनाने लगा। सकुचाई कली और सकुचाने लगी। भँवरा स्थिर हुआ तो कली कुनमुनाई, “देखो, पीड़ा मत करना। “ भँवरा फुसफुसाया, “बिल्कुल नहीं। “ और वह बिछ गया। “ कली सिहरी और फिर खिल गयी।

टिनएज का प्यार यूं ही परिभाषित होता है जिसे मनु स्वामी ने बड़े रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है।

मनु जी की एक रचना है “प्रेरणा”, रचना उद्धरत कर रहा हूँ-

कल्पना-लोक में चित्रकार अपनी प्रेरणा के रूबरू था। “सुनो, मैं एक विलक्षण चित्र बनाना चाहता हूँ। मुझे प्रेरित करो न!”

प्रेरणा सकपकाई, फिर चित्रकार के मुताबिक ढलने लगी। प्रेरणा का सौष्ठव माप-तोलकर चित्रकार अपनी उँगलियाँ चलाने लगा और वह परम संतुष्ट था।

कलमकार, संगीतकार, चित्रकार ऐसी कल्पना करके प्रेरणा खोजने की सफल/असफल कोशिश किया करते हैं। कई बार परिणाम संतुष्टि/ असंतुष्टि से परे भी प्राप्त होते हैं।

मनु स्वामी की ये विशेषता है कि वे कथाओं में बिंब और प्रतीको का भरपूर प्रयोग करते हैं, यह गुण उनकी काव्यात्मकता को प्रदर्शित करता है। लघुकथाओं में काव्यात्मकता बहुत कम लेखको में देखने को मिलती है। एक प्रयोग उनकी रचना “समर्पण में देखे- बीज के समक्ष यह आह्लदकारी क्षण था। मिट्टी भी श्रंगार को प्रस्तुत हुई थी। यह प्रथम अवसर था, जब बीज और मिट्टी इतना करीब थे कि बीज आक्रामक हो उठा। पाशोपेश में सिमटी मिट्टी ने भी पराजय स्वीकार कर ली। बीज की प्रचंडता के चिह्न मिट्टी ने स्पर्श से टटोले तो वह मधुर संकोच से भर गयी।

यह रचना मानवेत्तर रचना का भी एक विशिष्ट उदाहरण है। यहाँ इस नियति को भी दर्शाया गया है कि सृजन की शक्ति में ही समर्पण पाया गया।

“नजराना” लघुकथा का कथानक इतिहास के अंतिम मुगल बादशाह के जीवन से लिया गया है, अंग्रेजों के द्वारा बहादुर शाह जफर के सामने उसके बेटे का कटा सिर नजराने के रूप में भेजा जाता है। बहादुर शाह जफर के जीवन का यह सबसे खोफनाक मंजर था। मनु स्वामी यहाँ एक संवाद लिखते हैं-“बेशक, हमारी औलाद इसी तरह सुर्खरु होकर बाप के सामने आया करती है। “

वे आपतकाल पर भी लिखते हैं, लेकिन वही खूबसूरती यहाँ भी है, वे बिम्ब का भरपूर प्रयोग यहाँ भी करते हैं। आपातकाल पर “परिणति” रचना को बेहद खूबसूरती से लिखा गया है। 1984 के दंगो से पूर्व भिंडरवाले के कुकृत्यों पर मनु स्वामी “आस्था” शीर्षक से लघुकथा लिखते हैं। अभिप्राय ये है कि उनके तरकश में हर तरह के तीर हैं। जब जिस तरह के तीर की आवश्यकता होती है उसे ही प्रत्यंचा पर चढाकर वे संधान करते हैं। उनकी कलम अन्याय के खिलाफ बोलती है, उनके अंदर समाजवादी समाज की स्थापना का स्वप्न पल रहा है, जब-जब वे समाज व्यवस्था, न्याय व्यवस्था से आहत होते हैं तो वे लिखते हैं, उनका लिखना समाज हित की उनकी बेचैनी को जब-तब उजागर करता है। मेधा पाटकर, अरुंधति राय जैसे अनेक नायक/ नायिकाएँ हैं जिनके जीवन में ऐसी अनेक घटनाएँ घटी कि उनके समाजहित के कामों के बावजूद उन्हें पुरस्कार के बदले यातना झेलनी पड़ी, ऐसा ही एक कथानक “पुरस्कार” रचना में लिया गया है। देखिये-

नदी के संरक्षणवादी आंदोलन पर प्रतिकूल टिप्पणी आई, तो उसने ज़ोर देकर कहा- ‘न्याय के सर्वोच्च मंदिर की यह अन्यायपूर्ण स्थापना अमानी है’। शीघ्र ही उस ‘कलम की सिपाही’ को पुरस्कृत कर दिया गया। एक दिन की कैद और दो हजार रुपए जुर्माना।

“स्वर्ग” लघुकथा मनु स्वामी की कर्म के महत्व को प्रदर्शित करती एक सामान्य सी रचना है जो कथा-विन्यास के जरिये अपना अभीष्ट पा जाती है।

“एक बार फिर” संग्रह की अंतिम रचना शीर्षक रचना है जिसमें मनु जी अन्तरिक्ष वैज्ञानिक कल्पना चावला को अंतिम विदाई देते हैं।

मनु जी के पास लघुकथा जगत को देने के लिए असीम खजाना है। उनका लेखन उन्हें सामान्य से विशिष्ट बनाता है। उनके लघुकथा साहित्य पर लेखको, आलोचको को अधिक लिखे जाने की अवश्यकता मैं अनुभव करता हूँ। मेरी समझ से उनके लेखन पर गहन चर्चा के बिना लघुकथा साहित्य की आलोचना अधूरी होगी।

– उत्तम नगर, नई दिल्ली, मो. 83778 75009

लघुकथा

जलेबियाँ गिरेंगी तो कुत्ते लड़ेंगे ही

चंद्रेश कुमार छतलानी

रोज़ की तरह ही वह बूढ़ा आदमी आज भी कुत्तों के लिए जलेबियाँ लाया। कुत्ते उसके पीछे-पीछे चलने लगे। रोज़ तो वह एक कोने में जाकर हर एक कुत्ते को दो-दो जलेबियाँ बांट देता था, आज एक कुत्ता थोड़ा तेज़ भौंका तो वह घबरा गया और जलेबियों का पैकेट उसके हाथ से छूट कर बीच सड़क में ही गिर गया। पैकेट के गिरते ही सारे के सारे कुत्ते उस पैकेट पर झपट पड़े और जलेबियों के लिए एक-दूसरे पर भौंकने और लड़ने लगे। उस लड़ाई में किसी को जलेबी मिली तो किसी को नहीं। उस बूढ़े आदमी ने देखा जो ताकतवर कुत्ते थे वे सारी जलेबियाँ चट कर गए और कमज़ोर कुत्ते गुर्राते ही रह गए।

वह कुछ देर उन्हें देख कर सोचता रहा, फिर उसने अपना सेलफोन निकाला और सड़क के एक कोने पर जाकर एक नम्बर मिला कर बोला, "एडवोकेट जी, आज मिल सकते हैं क्या? मुझे वसीयत करवा कर मेरे बाद अपने बच्चों में सब कुछ बराबर-बराबर बांटना है।" **–उदयपुर, मो. 99285 44749**

लघुकथा

मुस्कान

पूनम चौहान

मिसेज सिंह ने अपने जीवन की कुल जमा पूंजी अपनी पढ़ाई का सदुपयोग करने का मन बनाया।

आज उसके स्कूल की ओपनिंग थी यानी पहला दिन। उसने पूर्व में खूब तैयारी की, पम्पलेट से लेकर डोर टू डोर कैम्पेनिंग, सब कुछ करके कुर्सी पर बैठ सकून की सांस ली। उसे विश्वास था कि जल्दी ही दाखिले शुरू होंगे।

उसने आंखें बंद की, पिता की शिक्षा को याद किया।

अटेंडेंट ने आकर बताया कि कोई बच्चे के दाखिले के लिये आये हैं। उसने अन्दर भेजने का आदेश दिया और खुद को एक बार फिर संयत किया।

आगंतुक कुर्सी सरकाते हुए बैठे और परिचय देते हुए कहा- " जी, मेरा नाम बसंत है, मैं अपनी चार साल की बेटी का दाखिला कराने आया हूँ। "

मिसेज सिंह ने अपनी चिरपरिचित मुस्कान बिखेरते हुए कहा-" स्कूल के नियम और फीस इत्यादि इस एडमिशन फॉर्म के साथ नत्थी हैं, कल इसे स्कूल में जमा करा दीजिए। "

अगले दिन मिस्टर बसंत की पत्नी फॉर्म जमा करने आई तो भोले मन से मिसेज सिंह से बोली-" मैम, मेरे पति कह रहे थे कि प्रिंसिपल की मुस्कान बहुत मोहक है, मैं इतना मोहित हुआ कि मैंने अपनी काव्या का एडमिशन कराने का सोचने में जरा भी समय नहीं लगाया। "

मिसेज सिंह ने फॉर्म जमा करते हुए कहा-" कल बच्चे का पहला दिन है, उसके पिता से कहिएगा कि वो खुद बच्चे को छोड़ने आएँ। "

अगले दिन बसन्त बच्चे को छोड़ने आया तो बहुत खुश था। जैसे ही प्रिंसिपल रूम में प्रवेश किया। मिसेज सिंह ने बैठने का इशारा किया और बहुत ही सहज होकर कहा-"मिस्टर बसंत, हमारे स्कूल में एक रिसेप्शनिस्ट की जरूरत है,अपनी पत्नी को आप इस जॉब के लिए भेज दे तो उनकी मुस्कान से रोज दो-चार एडमिशन मिल जाया करेंगे। आपका और हमारा दोनो का ही फायदा हो जाएगा। "

मिसेज सिंह की बात सुनकर मिस्टर बसंत की जुबान तालु से चिपक गयी थी। **– नई दिल्ली, मो. 96501 48719**

लघुकथा

दादी का चश्मा

निरुपमा सिंह

अरे बच्चों कहीं मेरा चश्मा देखा है क्या?

दादी अम्मा का हर रोज़ चश्मा खोने का शोर मचता रहता । चश्मा आँखों पर विराजमान रहता और खोजबीन सारे घर में। अरे बिट्टो तू ढूढ़ दे ,बबलू तू ढूढ़ कर ला दे, पांच रुपए ले लियो।

बबलू ने सबसे पहले नज़र दादी के चेहरे पर ही डाली पर आज़ निस्तेज आँखें ही दिखाई दीं। वहाँ से चश्मा नदारद था।

"दादी जरा याद करो आज़ कहाँ- कहाँ गईं थीं। "

"अरे बेटा! आज तो कहीं घूमने न गई, बस वो घासीराम की बहू उपले रख रही थी पथवारे में, सो वहीं बैठी उसे देखती रही और बतियाती रही। "

बबलू बोला- "जब वहाँ बैठी थीं क्या तब चश्माआँखों पर था ?

दादी बोली -"हाँ था, वरना घर तक कैसे पहुँच पाती?"

दादी ने सबसे गुहार लगाई कि कोई चश्मा ढूढ़ कर दे दे तो वो अपने पसंदीदा सीरियल्स देख लेंगी वरना खाली बैठे कैसे समय कटेगा?

संध्या समय दादी ने घर के सभी बच्चों को अपने पास बुलाया और बोली- "बच्चों! आज मैं तुम सबको एक कहानी सुनाऊँगी। सुनोगे?"

बच्चों को और क्या चाहिए था। सभी बच्चे दादी के इर्द-गिर्द हो गए और बड़े ध्यान से "एक था भुलक्कड़"नामक कहानी सुनने लगे। कहानी में एक जगह पर जो वृतांत आया कि भुलक्कड़ अपने चांदी के रुपयों का बर्तन कहीं खेत में दबा कर भूल गया था। उस बर्तन को ढूँढने के लिए भुलक्कड़ ने सारा खेत ही खोद डाला था।

तभी दादी को ध्यान आया कि आज उपले पकड़वाते हुए उनकी आँख में कुछ गिर गया था और उन्होंने चश्मा उतार कर पास ही एक ठूंठ खड़े पेड़ के कोटर में रख दिया था। फिर वो आँख की तकलीफ़ के कारण जल्दी में घर की ओर चली आई थी। फिर क्या था दादी भी खुश और बच्चे भी आज बहुत समय पश्चात दादी से कहानी सुन कर बहुत खुश हुए।

नटखट बिट्टो बोल पड़ी - "दादी पहले वादा करो आप हमें रोज़ाना एक कहानी सुनाओगी वरना मैं रोज़ ही आपका चश्मा छुपा दिया करुँगी"।

दादी भी बच्चों का साथ पाकर गदगद हो गई। जिस साथ के लिए वह हमेशा तरसतीं थीं आज वही दादी अपने नौनिहालों का साथ पाकर अत्यंत प्रफुल्लित थीं। मन ही मन चश्मा खोने को एक वरदान समझ बैठी। **–मुंबई 9140745907**

लघुकथा

हत्यारिन

शालिनी कपूर

सलाखों के बीच बस इतना फासला है कि वह अपनी हथेली बाहर निकाल धूप के टुकड़े की गरमाई महसूस कर सके। अंधेरी सीलन भरी कोठरी का खुरदुरा फर्श उसे परेशान नही करता।

ब्याह के दो महीने भी नही बीते थे कि खेत मे पानी देने गए पति को साँप ने काट लिया डॉक्टर-वैद्य बुलाने की मोहलत भी नही मिली और खेल खत्म हो गया।

दो ही महीने बाद उर्मि पिता की देहरी पर वापस लौट आई एक नन्ही सी जान को अपनी कोख में सम्हाले। जिस बेटे को दुनिया के सर्द-गर्म से बचा अपने कलेजे से लगाकर पाला था; आज उसी सोलह साल के जवान बेटे की हत्या के आरोप में कालकोठरी में उम्रकैद की सज़ा भुगत रही है।

न जाने कौन-सी वह मनहूस घड़ी थी कि बचपन का साथी उम्र के इस दौर में मिला तो वह अपनी तपस्या भूल उसके प्रेम की ठंडी छाँव में आश्रय ले बैठी। जवान हो रहा बेटा न जाने कब उसके आँचल से छिटक 'मर्द' बन बैठा था। दोपहर को स्कूल से वापस लौटा बेटा माँ के कमरे से निकलते प्रेमी को देख तिलमिला उठा। पास पड़ी कुल्हाड़ी उठा उर्मि की ओर झपटा और चौखट की चोट से लड़खड़ा कर सीधे कुल्हाड़ी पर गिर पड़ा। कटे गले से खून की धार बह निकली।

खबर छपी- " कलियुगी माँ ने प्रेम प्रसंग में रोड़ा बने बेटे को मौत के घाट उतारा। " **–नोएडा, उत्तरप्रदेश, 9354312226**

लघुकथा

"मर्द"

ज्योति स्पर्श

"अब पैर का दर्द कैसा है ?"- रीता ने अपनी दोस्त दिव्या से फोन पर पूछा।

"वैसा ही है, दर्द बढ़ता ही जा रहा है।"-दिव्या ने जवाब दिया था।

"दवाई ली ?"- रीता ने अगला सवाल किया।

"हाँ, बस अभी-अभी खाई"-दिव्या की आवाज में कराह को रीता साफ साफ सुन रही है।

".... सुनो, ठीक एक घंटे बाद फिर से मलहम लगा लेना।"-रीता ने चिंतित भाव में अपनत्व कहा।

"हम्म"-दिव्या आगे कुछ बोल नहीं पाई। मानो अंदर बाहर से कहीं ज्यादा दर्द था।

'और मलहम लगाने से पहले नमक मिले गर्म पानी से पैर जरूर सेंक लेना।" -रीता ने कहा।

'हम्म...इतनी चिंता न कर, दर्द ही तो है ठीक हो जायेगा, कोई मर्द थोड़े है..."-दिव्या ने लगभग सारा दर्द उड़ेलते हुए कहा।

–पटना, मो. 8210759758

लघुकथा

ख़्वाब

भावना भट्ट

नहाकर बाहर आई सुरभि, आईने के सामने खड़ी देख रही थी खुद का चहेरा। कभी मौसमी चटर्जी से मिलते-जुलते चेहरे की झुर्रियों को देखती हुई, बालों की सफेदी में तलाश रही थी खुद को।

अकेलेपन का बोझ और सन्नाटा पसर गया था घर में। बात- बात में सूरज का गुस्से से फूट पड़ना आज भी मौन कर गया था सुरभि को।

" घर में बैठकर तुम्हें क्या पता कि पैसे कैसे कमाये जाते हैं?आयी बड़ी किताब छपवाने वाली!"

बच्चों की परवरिश, पढ़ाई और बुजुर्गों की देखभाल करने के लिए सुरभि ने सरकारी नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया था।

समय की चक्की में पीसकर उड़ चुके अरमानों ने, फिर से सांस लेने का एक प्रयास ही तो किया था।

सुरभि ने बहुत चतुराई से कुछ काले बालों को छिपा दिया श्वेत बालों में और डबडबाई आँखों से अपने ख़्वाबों की कब्र में को देखती रही निःशब्द। **–भावनगर, गुजरात, मो. 9898991413**

लघुकथा से जुड़े कुछ संस्मरण

प्रशंसा करने की प्रवृत्ति अभी तक विकसित नहीं हो पाई है...

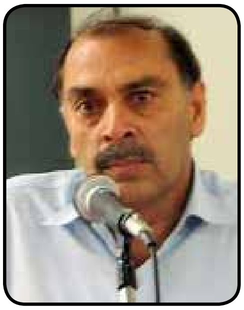

अशोक भाटिया

(लघुकथा के सन्दर्भ में संभवत: यह पहला संस्मरणात्मक प्रयास है। मित्रगण इसे आगे बढ़ाएंगे तो अच्छा लगेगा और इनका स्वरूप भी बेहतर होते जाने की आशा रहेगी)

सन 2001 में 14 प्रतिनिधि लघुकथा-लेखकों को लेकर 'पैंसठ हिंदी लघुकथाएँ' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई थी। उसी वर्ष कैथल(हरियाणा) में जनवादी लेखक संघ के राज्य-स्तरीय अधिवेशन में एक वरिष्ठ लघुकथा-लेखक को पुस्तक दिखाई तो वे बोले – आपने इसमें प्रेमचंद,प्रसाद वगैरा को शामिल करके अपनी कुंठा का परिचय दिया है। लघुकथा तो आठवें दशक की देन है।" उस पुस्तक में वे शामिल नहीं थे। विडंबना यह कि स्वयं उस रचनाकार की एक लघुकथा भी सत्तर से पहले की लिखी हुई मिली है। उनके इस वक्तव्य से प्रेरित होकर मैंने सन 2011 में 'नींव के नायक' पुस्तक सम्पादित की, जिसमें सन 1970 तक के 29 लेखकों की 177 लघुकथाएँ लगभग दो वर्ष के परिश्रम से संजोई गयी थीं। किन्तु हमारे एक और सक्रिय मित्र ने कहा– "यह पुस्तक अधूरी है।" क्या कहता। शोध कभी अंतिम नहीं हुआ करते। पहली लघुकथा और लघुकथा पर पहली पी.एच.डी. खोजते हुए जाने कितने तथ्य सामने आते गए हैं।

सन 2005 में मैंने 'निर्वाचित लघुकथाएँ' पुस्तक सम्पादित की। इसमें 110 लेखकों की 150 लघुकथाएँ शामिल हैं। हरियाणा के एक लेखक का कथन था कि इसमें कुछ की दो तो कुछ की एक लघुकथा क्यों है? ज़ाहिर है, उनकी एक लघुकथा शामिल थी। जमीनी सच्चाई और संपादक के दृष्टिकोण को जानने की कोशिश न कर ऐसी बातें अक्सर कही जाती हैं। सन 2015 में पंजाबी के 12 मिन्नी कहानीकारों की प्रतिनिधि रचनाएँ 'धुंध चीरदी किरन' नाम से निकाली, तब भी ऐसा ही अनुभव हुआ। इसमें प्रमुख चार लेखकों की 17 या 18 रचनाएँ थीं, जो अंत तक आते-आते छह-सात तक रह गई। एक लेखक का कहना था कि और लेखक शामिल कर सबकी पांच-पांच मिन्नी कहानियाँ देनी थीं। इस प्रकार हर समय अपना नाम देखने की प्रवृत्ति हावी रही है।

सन 2014 में हरियाणा ग्रन्थ अकादमी ने मुझसे 'समकालीन हिंदी लघुकथा' नामक आलोचना-पुस्तक लिखवाई थी। इसके आठ में से एक अध्याय में प्रमुख रचनाकारों का परिचय दिया है। हरियाणा के एक लेखक की टिप्पणी थी – "इसमें हरियाणा कहाँ है?" हरियाणा से उनका अभिप्राय स्वयं से था। इस अध्याय में 21 प्रतिनिधि लघुकथाकारों में चार हरियाणा के हैं और 18 अन्य प्रमुख लघुकथा-लेखकों में तीन हरियाणा के हैं। संतुलन भी कोई चीज़ होती है। लेकिन हिंदी लघुकथा के दायरे में आत्म-मुग्धता की मूसलाधार वर्षा अभी तक कम नहीं हुई।

मधुदीप से मेरी आत्मीयता रही है। विश्व पुस्तक मेले में हर वर्ष अपना बैग उसी के स्टाल पर रखा करता था। सन 2014 में 'पड़ाव और पड़ताल' के तीसरे खंड में उनकी लघुकथा 'समय का पहिया घूम रहा है' भी छपी। रचना चर्चित रही है। तब तक नयी (भाजपा) सरकार रक्षा क्षेत्र में 49% तक एफ.डी.आई. को मंज़ूरी दे चुकी थी, जो एक खतरनाक कदम था। मैंने मधुदीप से कहा कि इस लघुकथा का एक पांचवां दृश्य इस तथ्य पर जुड़ना चाहिए। मधुदीप ने कहा- "यह मैं नहीं लिखूंगा।" सोचता हूँ कि क्या कोई भी पार्टी देश से बड़ी हो सकती है। लेखन की सीमाएं इसी तरह बना करती हैं।

दिल्ली के ही एक और विश्व पुस्तक मेले का प्रसंग याद आ गया। मधुदीप के स्टाल के निकट दिल्ली के दो मित्र मिले। एक ने मुझे कहा कि उनके लघुकथा-संग्रह की भूमिका लिख दूं। मैंने उनके साथी की तरफ संकेत कर कहा कि आपके ये मित्र भी लघुकथाकार हैं, इनसे लिखवा लें। वे बोले कि एक दुश्मन की भी टिप्पणी शामिल होनी चाहिए। हमारे लघुकथा-क्षेत्र का परिदृश्य कैसा है, आप ही मूल्यांकन करें।

पुस्तक मेले में ही सन्दीप तोमर से भी मुलाकात हुई, उनसे गुफ्तगू करते हुए किसी ने एक सुन्दर छायाचित्र भी खींचा। सन्दीप

ने एक साक्षात्कार के कुछ प्रश्न भेजे थे, समयाभाव में मैं जवाब नहीं भेज पाया, उन्होंने इसे बड़ी सहजता से लिया, जैसा कि उनका स्वभाव है। अन्धविश्वास पर किताब तैयार करते हुए उनसे एक रचना ली और उसे पुस्तक में शामिल भी किया। संदीप की आत्मकथा के कुछ अंश पढ़े तो लगा कि संदीप ने बेबाकी और स्पष्टता से लिखा है।

कई बार बड़ी सकारात्मक प्रतिक्रियाएं भी देखने में आती हैं। कुछ समय पहले मैंने 'महक' लघुकथा लिखी, तो कुछ मित्रों को भेज दी। थोड़ी देर में बलराम अग्रवाल का फोन आया– "सुबह-सुबह 'महक' लघुकथा से मेरा घर महक गया है। अच्छी लघुकथाओं की ढंग से प्रशंसा करने की प्रवृत्ति अभी तक विकसित नहीं हो पाई है।

अभी 19 जून, 2024 को लघुकथा शोध केंद्र भोपाल के आयोजन में एक सुखद अनुभव हुआ। उद्घाटन सत्र में मंच पर कुलपति संतोष चौबे,'साक्षात्कार' के संपादक विकास दवे, प्रबोध कुमार गोविल। विष्णु प्रभाकर जी के सुपुत्र अतुल प्रभाकर आदि के साथ मैं उपस्थित था। अपने वक्तव्य में मैंने विष्णु जी की लघुकथा-पुस्तकों के नाम गिनाते हुए अंत में 'सम्पूर्ण लघुकथाएँ' पुस्तक को सन 2009 में प्रकाशित बताया। अतुल जी ने कहा कि यह 2011 में छपी थी। खैर,वक्तव्य समाप्त हुआ तो अतुल जी मेरे पास आए। पहले पूछा कि मैंने वरिष्ठ त्रयी में कौन-से लेखक बताए थे? फिर कहा कि पिताजी की 'सम्पूर्ण लघुकथाएँ' पुस्तक 2009 में ही छपी थी। वे इसकी पाण्डुलिपि स्वयं तैयार करके गए थे।" यह मेरे लिए आश्चर्य की बात थी। स्वयं आकर सहजता से उचित तथ्य को रेखांकित कर रहे हैं। ऐसे कितने लेखक हैं? अतुल प्रभाकर जी, आपको प्रणाम करता हूँ।

–करनाल, हरियाणा, मो. 94161-52100 Email. : ashokbhatiahes@gmail.com

प्राण-रक्षक : चार लघुकथाएं

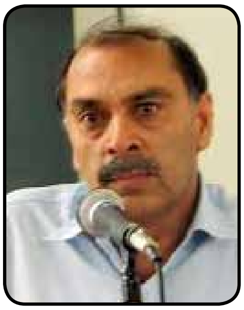

अशोक भाटिया

एक

देवसेना कुँवारी थी। वैद्यक की विशेषज्ञ। एक बार एक ग्रामीण एक अचेत युवक को देवसेना के पास ले आया। वह युवक शीतली झरने में गिर गया था और मानो हिमखंड बन गया था।

किन्तु देवसेना परम्परागत वैद्य-धर्म कैसे निभाए! उसके वैद्य-पिता दिवंगत हो चुके थे, और उपचार कर-करके अब देवसेना के पास औषधि नहीं बची थी। उसके समक्ष धर्म-संकट मानो साक्षात् उपस्थित था।

तभी उसे कहीं से पिता की पुकार सुनाई दी– इसे अपनी देह की ऊष्मा देकर धर्म का पालन करो।'

सुनकर आश्चर्यचकित देवसेना मानो हिल उठी– वो कैसे? मैं तो कुँवारी हूँ।'

उसे पिता की आवाज़ फिर सुनाई दी—शास्त्र-सम्मत विधि से। गन्धर्व विवाह करो..शीघ्र... अन्यथा रोगी के प्राण जा सकते हैं।'

दुविधाग्रस्त मन ने दिशा पकड़ी। तब वहां वैद्यक धर्म के साथ-साथ नारी-धर्म का भी पालन हो गया।

दो

कुमारी देवसेना ने वैद्यक धर्म का पालन किया। उसने एक अचेत युवक से गन्धर्व विवाह करके उसे देह की ऊष्मा प्रदान की और मृत्यु से बचा लिया।

युवक जब सचेत हुआ तो स्थिति को देखकर आश्चर्यचकित रह गया। देवसेना ने प्रसंग का वर्णन कर कहा – हे देव! आप मुझे अर्धांगिनी अथवा दासी के रूप में स्वीकार कर कृतज्ञ करें।'

मैं शीघ्र लौटकर आपका वरण करूँगा देवी!' कहकर युवक तेज़ी से लौट गया। जाते हुए बता गया कि वह विक्रमपुर राज्य का युवराज है।

देवसेना सपने बुनने में तल्लीन हो गई थी। तभी युवराज का राजप्रहरी वहां देवसेना का वध करने के लिए पहुँच गया। देवसेना

आश्चर्यचकित हो गई। उसने राजप्रहरी से इसका कारण जानना चाहा।

'आपने युवराज से विवाह करने का स्वप्न देखा है,जो अपराध है। 'राजप्रहरी ने क्रोधावेश में बताया।

तीन

विक्रमपुर के राजप्रहरी को ज्ञात हुआ कि शिल्पकार ने देवसेना को बचाने के लिए अपने कलाधाम में छिपा दिया है।

राजप्रहरी लाव-लश्कर के साथ कलाधाम पहुंचा। उसने तलवार निकालकर क्रोध से शिल्पकार को देखा। शिल्पकार नेइसका कारण जानना चाहा।

'देवसेना ने युवराज से विवाह का स्वप्न देखकर मर्यादा का अतिक्रमण किया है। इसलिए उसके वध का आदेश हुआ है।'

देवसेना चकित थी। वह सोचने लगी— 'अपनी प्राणरक्षक और अर्धांगिनी के वध का आदेश देना किस मर्यादा का पालन है?'

तभी राजप्रहरी ने देवसेना की गर्दन पर तलवार रखकर कहा– तुम्हारा सौन्दर्य मुझे तुम्हारा वध करने से रोक रहा है... तुम मुझे सहर्ष वरण कर लो तो तुम्हारे प्राण बच जाएंगे।'

सुनते ही देवसेना क्रोधावेश में बोली –अब तुम्हारी मर्यादा कहाँ गई?'

चार

देवसेना को ढूंढता हुआ युवराज, शिल्पकार के कलाधाम में पहुँच गया। युवराज ने शिल्पकार को बताया– एक साधारण स्त्री कहीं राजमहल के लिए समस्या न बन जाए, इसलिए मैंने देवसेना के वध का आदेश दिया था।'

वयोवृद्ध शिल्पकार ने युवराज को बताया कि आप दोनों का गन्धर्व विवाह हुआ था। इसलिए देवसेना को किए अपने प्रण के अनुसार आप इसे अंगीकार कर साथ ले जाएँ।'

यह सुनते ही युवराज ने शिल्पकार का वध करने के लिए तलवार निकाल ली। बोला— मैं तुम्हें देवसेना को कलाधाम में आश्रय देने और राजप्रहरी को दिग्भ्रमित करने का अपराधी मानता हूँ।'

तभी देवसेना दोनों के मध्य में आ गई। बोली —तुम अपनी प्राणरक्षक को मारने का आदेश दे सकते हो। किन्तु मैं ऐसी कृतघ्न नहीं कि मैं अपने प्राणरक्षक का वध होने दूँ।'

कहकर देवसेना ने कटार से युवराज का वध कर दिया।

–करनाल, हरियाणा, मो. 94161-52100 Email. : ashokbhatiahes@gmail.com

लघुकथा साहित्य में 'रोबोट' का प्रयोग, कितना सार्थक . . .

विरेंदर 'वीर' मेहता

भले ही मशीनी मानव अर्थात् 'रोबोट' हमारी संस्कृति में एक नए शब्द का आभास दिलाता है लेकिन इस 'मशीन मानव' का मानव संस्कृति में एक लंबा इतिहास रहा है। हालांकि रोबोट की एक मोबाइल मशीन के रूप में, आधुनिक अवधारणा बहुत पुरानी नहीं है, पिछली सदी के पचासवेँ दशक से तो कंप्यूटर विज्ञान में कृत्रिम बुद्धि (आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस) को निरंतर विकसित करने के प्रयास हो रहे हैं। लेकिन साहित्यिक संदर्भ में इसकी चर्चा प्रारंभिक मिथक और दैवीय-उपकरणों के रूप में कालांतर से होती आ रही है। हाँ, प्रामाणिक तौर पर इसकी चर्चा भारतीय साहित्य में न के बराबर ही रही है। अलबत्ता विश्व साहित्य के संदर्भ में इस विषय की चर्चा करीब दो सदी पूर्व होने लगी थी।

'रोबोट', जिसका वास्तविक शाब्दिक अर्थ हुक़्म का गुलाम यानी बंधुआ मजदूर माना गया है; का विषय अतीत में बहुदा विज्ञान कथा लेखकों द्वारा ही उठाया गया है। यदि अतीत के कुछ उदाहरणों पर दृष्टि डाली जाए तो मानव द्वारा रचित इस यांत्रिक कृति का साहित्य में जिक्र 1816 में ओलिम्पिया लघुकथा **द सैंडमैन** में 'हॉफमैन' के नाम से हुआ और स्टीम मैन द्वारा **एडवर्ड एस एलिस** में एक मानव विज्ञान तंत्र में 'प्रेयसीज' का 1868 में हुआ। वर्ष 1907 में बच्चों के एक उपन्यास **ओजमा का ओजमा** को मानव-दिखने वाले यांत्रिक व्यक्ति का पहला परिचय कहा जाए

तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगा। यही वह परिचय था जिसे बाद में 'ह्यूमनॉइड रोबोट' परिभाषा के समक्ष माना गया। यहां यह कहना ग़ौरतलब होगा कि इसके करीब पन्द्रह वर्ष बाद ही शब्द 'रोबोट' को गड़ा गया था। इस तरह आधुनिक रोबोट शब्द का पहला प्रयोग कैरेल कैपेक ने अपने एक नाटक में **आर.यू.आर.** (रोसुम के यूनिवर्सल रोबोट) नाम से 1920 में किया था, बाद में इसका 1923 में अंग्रेजी प्रकाशन भी सामने आया।

हालांकि देखा जाए तो कुछ अर्थों में ये सभी उदाहरण आत्म-जागरूकता के बिना केवल मानव-नियंत्रित यंत्र की कथाएं थी। इसकी स्पष्ट और विस्तृत व्याख्या करीब सौ साल पहले एच जी वेल्स की लिखी कथा से समझी जा सकती है, जिसमें एक वैज्ञानिक एक 'रोबोट' बनाता है। जिस लैब में इस रोबोट को रखा जाता है, उसके सामने बने बगीचे में आने वाले 'कपल्स' (जोड़े) की बातें सुन-सुनकर वह रोबोट भी प्रेम करना सीख जाता है और अनचाहे ही वह वैज्ञानिक की बेटी से प्यार करने लगता है। लेकिन बाद में एक दिन उसी रोबोट द्वारा 'उसे' मार भी दिया जाता है। जब उस लड़की का वैज्ञानिक पिता; इस घटना की तह में जाकर इसकी वजह ख़ोजता है तो उसे पता चलता है कि रोबोट की प्रोग्रामिंग इस तरह की गई थी कि उसकी छाती से लगने वाले व्यक्ति को वह मार डाले। अब जब लड़की ने ऐसा किया तो रोबोट ने वही किया जैसा कि उसके प्रोग्राम्ड में फिक्स था।

बहरहाल विश्व साहित्य से इतर भारतीय साहित्य में रोबोट या इससे जुड़ी कथाएं दो-तीन दशक पूर्व तक कहीं देखने में नज़र नहीं आती हैं। पूर्व में बाल कॉमिक्स या विज्ञान कथाओं में भी यदि इनकी चर्चा होती थी तो वह भी अक़्सर केवल मनोरंजन के दृष्टिकोण पर ही टिकी होती थी।

करीब पैंतालीस वर्ष पूर्व (1976) सुपरिचित साहित्यकार सत्यजीत रॉय द्वारा लिखी एक रचना जरूर एक ऐसा अपवाद कही जा सकती है, जिसने भारतीय साहित्य में रोबोट को बतौर विषय एक ज़बरदस्त पहल दी थी। उनकी यह रचना **अनुकूल** जिस पर बाद में फिल्ममेकर सुजॉय घोष ने शार्ट टेली फ़िल्म भी बनाई थी, एक रोबोट को लेकर उनकी कल्पना का एक अद्भुत उदाहरण थी। इस कथा में एक शिक्षक अपना जीवन सुगम बनाने के लिए एक रोबोट जिसका नाम अनुकूल रखा जाता है; को लाता है और नौकर को निकाल कर उसकी जगह रोबोट को रख लेता है। कथा के क्लाइमेक्स में ठीक ऐसे ही एक दिन उस शिक्षक को नौकरी से निकाल कर एक रोबोट टीचर से रिप्लेस कर दिया जाता है। भारतीय परिवेश में घरेलू नौकर और नौकरीपेशा लोगों के संदर्भ में उस दौर में मशीनीकरण और आने वाले संभावित समय में 'रोबोटिक ट्रेंड' के चलते बढ़ती बेरोजगारी पर यह रचना एक गहरा मंथन करती नजर आती है। ऐसा ही एक विषय उठाया गया था अस्सी के दशक में रचित लघुकथा **रोबोट का कमाल** (लेखक राम यतन प्रसाद यादव) में, जिसमें 'मैनपावर' के स्थान पर रोबोट के प्रयोग की बात की गई थी। हालांकि उस समय यह रचना अपने नकारात्मक संदेश के चलते आलोचना का शिकार भी हुई थी।

बहरहाल यदि इसी तथ्य को वैचारिक और संवेदनशीलता के स्तर पर अथवा भारतीय समाज में व्याप्त विसंगतियों के आधार पर देखा जाए तो शायद रोबोट पर आधारित रचनाओं की संख्या साहित्य जगत में नगण्य ही हैं। विशेष तौर पर इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो लघुकथा साहित्य में इसका अभाव पीछे कई दशक से देखा जा सकता है। हालांकी हाल ही के कुछ वर्षो में इस विधा में रोबोट पर लिखने का रुझान बढ़ा है, लेकिन इसमें से कितने प्रयास गम्भीर रुप से किए गए हैं इस पर अवश्य विचार किया जा सकता है।

यदि हम हिंदी लघुकथा साहित्य के संदर्भ में, हाल ही में नजर आने वाली 'रोबोट–संदर्भित' रचनाओं की बात करें, तो सहज ही इन्हें तीन भागों में बांटा जा सकता है। प्रथम वह; जिनमें केवल रोबोट के शाब्दिक भाव का प्रयोग किया गया है, दुसरी वह; जिनमें रोबोट के भौतिक रूप को एक 'फिल अप' की तरह उपयोग किया गया है और तीसरी वह; जिनमें रोबोट को एक पात्र के रूप में पूर्ण रूप से रचना का हिस्सा बनाया गया।

रोबोट के शाब्दिक भाव का प्रयोग

यदि बात की जाए; प्रथम भाग की साहित्यिक रचनाओं की, तो ऐसी रचनाओं में केवल रोबोट के शाब्दिक भाव का ही उपयोग मुखरता से किया गया नजर आता है। अर्थात् इस प्रकार की रचित रचनाओं में रोबोट की भौतिक या व्यावहारिक उपस्थिति किसी रचना में दिखाई नहीं देती। उदाहरण के लिए **रोबोट** शीर्षक से लिखी गई कई लघुकथाओं में समान रूप से रोबोट के शब्दिक और व्यवहारिक स्वरूप की साम्यता को ही आधार बनाया गया है। एक रचना में **(लेखिका त्रिलोचन कौर)** यह साम्यता पढ़ाई के बोझ तले दबे बच्चों की तुलना रोबोट के साथ करती नजर आती है तो एक दूसरी रचना में **(लेखिका कुसुम पारीख)** पति के आदेशों के साथ चलती पत्नी को रोबोट का उदाहरण मानना दिखाया गया है। इसी तरह एक रचना में **(लेखक नीलेश शर्मा)** कम आयु के नौकर को मशीन की तरह कार्य करते दिखाकर उसकी तुलना रोबोट से करते दिखाया गया है। **रोबोट** नाम की ही एक और रचना में **(लेखिका ज्योत्स्ना कपिल)** एक खिलोने रोबोट का समावेश तो है लेकिन विषय के स्तर पर यह रचना भी बाल

मानसिकता संदर्भ की ओर जाती है। एक लघुकथा **(लेखिका लक्की राजीव)** में एक व्यक्ति को घर में मशीन की गंध में आने पर जब वह इसकी खोज करता है तो वह पाता है कि यह गंध उसकी पत्नी से आ रही है, गौर करने पर वह पाता है कि जिस पत्नी को उसने अपने विचारों के हिसाब से बदलने में अपनी सफलता मानी थी, वस्तुत वह कोई बदलाव नहीं बल्कि एक स्त्री का रोबोट में कायान्तरण था। अर्थात् स्पष्ट है कि इस तरह की सभी रचनाओं में रोबोट शब्द और उसके कार्य शैली का व्यावहारिक रूप के अतिरिक्त रोबोट का कोई कार्य नहीं है।

रोबोट का फिल-अप के तौर पर होता प्रयोग

यदि बात की जाए दूसरे भाग की, तो इस तरह की रचनाओं में रोबोट का प्रयोग भौतिक रूप से अवश्य किया गया है लेकिन इस प्रकार की रचनाओं में भी कमोबेश रोबोट को केवल फिल-अप के तौर पर या उदाहरण स्वरूप ही उपयोग किया है। या ऐसे कहा जाए कि रोबोट के सहारे किसी और विषय को कथ्य का आधार बनाया गया है। जैसे एक चर्चित लघुकथा **'एलेक्सा, एक रोबोट कथा' (लेखिका अर्चना तिवारी)** में घर के मिनि प्रोग्रामर रोबोट एलेक्सा से घर की बहू की तुलना की जाती है कि जैसे एलेक्सा को मशीन मानकर उससे रेस्टलेस कार्य लिया जाता है, वैसे ही अपेक्षा घर के सभी सदस्यों द्वारा घर की बहू या माँ से की जाती है। ठीक ऐसे ही एक लघुकथा **'विश्रांति' (लेखिका अनघा जोगलेकर)** में दो रोबोटस (आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस) के आपसी वार्तालाप में उनकी देखरेख के विषय में अवहेलना के बिंदु पर उनकी तुलना एक नारी से की गई है।

एक और लघुकथा **'रोबो' (लेखिका इरा जौहरी)** में एक बच्चे द्वारा माँ के लेखन कार्य में मदद के लिए वेस्ट प्रोडक्ट से बनाए रोबोट की घोषणा पर उसकी माँ उसे इसकी बधाई देने के साथ एक प्रश्न भी सामने रखती है कि रोबो वे भावनाएँ और विचार कहाँ से लाएगा जो मानव मन में सहज ही जन्म लेते हैं। ऐसे ही लघुकथा **'सर्वश्रेष्ठ' (सविता मिश्रा 'अक्षजा')** में रोबोट और कलम के एक आपसी वार्तालाप; कि सर्वश्रेठ कौन? में दर्शाया गया है कि सर्वश्रेष्ठ की लड़ाई में व्यस्त रहने वाले भूल जाते हैं कि सबसे अधिक श्रेष्ठ तो समय रूपी ईश्वर है जिसकी इच्छा से सब चलायमान है। लेकिन यदि इस प्रकार की रचनाओं को मुख्यत: विषय के स्तर पर देखा जाए तो सहज ही यह बात स्पष्ट है कि इन रचनाओं में भी भले ही रोबोट को पात्र के तौर पर अथवा उसके व्यवहार आदि को कथ्य का हिस्सा बनाया गया है लेकिन रचना का केंद्रीय विषय या रचनाकार का लक्ष्य रोबोटिक नहीं है। अतः ऐसी लघुकथाओं में रोबोट के प्रयोग की गुंजाइश एक फिल-अप एलीमेंट से अधिक नहीं कही जा सकती।

रोबोट को पूर्ण रूप से कथ्य का आधार बनाती रचनाएं

एक सटीक दृष्टिकोण से देखा जाए तो तृतीय भाग की लघुकथाएं ही वस्तुतः रोबोट पर रचित लघुकथाएं कही जा सकती हैं, क्योंकि इस प्रकार की रचनाओं में न केवल रोबोट को पात्र के रूप में प्रयोग किया गया है बल्कि कई स्थितियों में तो रोबोट के सहारे आने वाले समय की संभावित तस्वीर भी खींची गई है।

ऐसी रचनाओं में यदि कोई एक नाम याद किया जाए तो स्वत् ही **'ऑटोमैन के आँसू' (लेखक रोहित शर्मा)** जैसी लघुकथा सामने आ जाती हैं, जिसमें रोबोट 'ऑटोमैन' के सहारे वृद्धावस्था में संतान की असहयोग भावना की गहन समस्या बनती जा रही विसंगति पर कथ्य रचा गया है। रचना में विदेश में बसे बेटे द्वारा माता-पिता द्वारा घर आकर मिलने की बात पर न आने के कई कारण गिनवाए जाते हैं और उन्हें दिए गए एक्पर्ट रोबोट 'ऑटोमैन' का हवाला दिया जाता है कि वे ऑटोमैन को उनकी जगह रखकर सारे कार्य करवाएं। ऐसे में इस दुःखद क्षणों में सहज ही ऑटोमैन के भी आँसू आ जाते हैं और वह अपने सॉफ्टवेयर इंजीनियर को कॉल करके पूछता है कि आख़िर उसने; उसके अंदर उठते इमोशन के लिए कोई आँसू वाला सेफ्टी वाल्व क्यों नहीं डाला?

कथा बड़ी सटीकता से समाज की विसंगति के साथ आने वाले कल में रोबोट की उपयोगिता और संभावना का समावेश करती है। साथ ही लघुकथा साहित्य में रोबोट के अस्तित्व पर भी एक संभावना जगाती है।

एक लघुकथा **'अदला बदली' (लेखिका अनघा जोगलेकर)** में रोबोट (फिमेल आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस) को पात्र बनाया गया है, जहाँ आज के युग में भाव-शून्य मशीन बन चुके इंसान की भावनाएँ लगभग समाप्त होती जा रही हैं, वहाँ इस रोबोट पात्र में फीड किए गए 'इमोशनल कोशेंट' अपनी भावनाओँ के चलते निरंतर बढ़ते हुए दिखाना, न केवल मानव और रोबोट के बीच एक चिंतनशील अंतर को दर्शाती है बल्कि लघुकथा मंथन के लिए भी विवश करती है।

एक लघुकथा **'विलुप्त' (डॉ. कुमारसम्भव जोशी)** हालांकि विशुद्ध रूप से रोबोटिक नहीं है लेकिन विज्ञान कथा स्वरूप में पुरुष प्रजाति के विलुप्त होने के बाद उसके पुनर्जीवित प्रयास पर रचित यह कथा रोबोट संदर्भ में उल्लेखित की जा सकती है। रचना में एक-दूसरे के पूरक कहे जाने वाले स्त्री-पुरुष में से पुरुष जाति के विलुप्त हो जाने की कल्पना और विशेष प्रयासों से 'एम-ट्वेंटी फ़ॉर (तेईस असफ़ल प्रयासों के बाद) के पुर्नजन्म की कथा है। जिसमें एम ट्वेंटी फ़ॉर विगत काल में पुरुष द्वारा स्त्री पर किए गए अन्याय पर लज्जित होने और 'फ़ीमेल' के अस्तित्व के सम्मुख

अपनी निष्क्रियता के चलते स्वयं ही पिछले 'तेईस एम' की तरह अपना विनाश कर लेता है।

एक और लघुकथा है **'ह्यूमन हाइबरनेशन' (लेखक चंद्रेश कुमार छतलानी)** जिसमें आने वाली तेईसवीं सदी की कल्पना की गई है, जब मानव द्वारा बनाया गया रोबोट न केवल मानव विचारशक्ति से आगे जाकर स्वयं अपनी प्रभुसत्ता कायम कर लेता है, बल्कि अपनी मानव जनित पहचान को भी पीछे छोड़ विलुप्त होते अपने जनक मानव से, वह उत्तर जानते हुए भी एक प्रश्न करता है कि अंधाधुंध पर्यावरण विनाश और ग्लोबल वार्मिंग के दुष्परिणाम जानते हुए भी मानव जाति ने स्वयं ही पृथ्वी का विनाश क्यों किया?

एक अन्य लघुकथा **'रोबी' (डॉ उषा कनक पाठक)** में साफ्टवेयर इंजीनियर पिता अपनी बेटी के अकेलेपन को दूर करने के लिए एक बच्ची रोबोट, रोबी बनाते हैं जिसमें त्रुटिवश बातों को पूरी तरह फॉलो न करने की कमी रह जाती है। वह रोबोट, बच्ची के साथ खेलने में रुचि रखती है लेकिन परिवार के बाकी सदस्यों के आदेश पर अधिक तवज्जो नहीं देती। लेकिन आश्चर्य जब होता है, जब एक दिन घर में बच्ची के दादा जी अकेले होते हैं और उन्हें हार्ट पेन की स्थिति में रोबी न केवल उन्हें दवाई देती है बल्कि उनका जीवन भी बचाती है। लघुकथा न केवल रोबोट के साथ पात्र के रूप में न्याय करती है बल्कि रोबोट में दर्शाये गए भावनात्मक और विचारात्मक बिंदु को भी मुखरता से सामने रखकर 'रोबोट के भविष्य' पर एक विचार बांटती है।

समग्र रूप से यदि इन स्थितियों पर विचार किया जाए तो सहज ही एक बात सामने आती है कि रोबोट को अपने कथ्य में उतारने वाले रचनाकारों में से कुछ ही आने वाले 'रोबोटिक एरा' के संभावित भविष्य पर अपनी पैनी दृष्टि जमाए हुए हैं, वरना शेष रचनाकार कहीं न कहीं रोबोट को अपनी रचनाओं में महज़ एक फिलअप के तौर पर ही उपयोग करके संतुष्ट हैं। आने वाले आधुनिक और वैज्ञानिक युग के मद्देनज़र लघुकथाकारों का यह लेखकीय ही नहीं नैतिक कर्तव्य भी बनता है कि वे निकट भविष्य को भांपते हुए अपने कथ्यों में आधुनिक वैचारिक विषयों का अधिक से अधिक समावेश करें। और ऐसे विषयों में रोबोट और रोबोट से होने वाले संभावित लाभ हानि के विषय सहज ही लघुकथा विधा को भी एक नई दिशा देने में भी सफल हो सकते हैं, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।

–लक्ष्मी नगर, दिल्ली, मो. 9818675207

पुस्तक समीक्षा

बारिश की बूँदे

मनोरमा पंत

आज पूरे विश्व में बिखराव, खोखलापन, हीनता, कुंठा का भाव आता जा रहा हैं, ऐसे नैराश्य भरे वातावरण में निशा भास्कर का लघुकथा संग्रह 'बारिश की बूँदे' मरहम का काम करता है। निशा जी की लघुकथाएं आज के त्रस्त मानव के मानस को न केवल ठंडक पहुँचा रही हैं वरन समाज में व्याप्त विसंगतियों से लड़ने का हौंसला भी देती हैं।

कुल 84 लघुकथाओं के इस गुलदस्ते के आत्मकथन में निशा भास्कर ने लघुकथा की परिभाषा, इतिहास, प्रकार, प्रयोगवादी लघुकथा लेखन पर समुचित प्रकाश डालकर एक सराहनीय कार्य किया है। उन्होंने लिखा है वर्तमान काल में वर्तमान समय आर्थिक युग में रूपांतरित हो चुका हैं जिसमें आमजन अपने साहित्य और संस्कृति से दूर होता जा रहा है। इस प्रकार उन्होंने एक कटु सत्य को उद्घाटित किया है।

निशा भास्कर

"बारिश की बूँदे "पढ़कर मुझे महसूस हुआ कि लघुकथाओं के माध्यम से हम समाज को पुनः साहित्य/संस्कृति से जोड़ सकते हैं।

इस लघुकथा की पहली लघुकथा 'स्वीकार है' प्रतिनिधि रचना है जिसमें गरीब परिवार का रोहन कुंठाग्रस्त होकर अपने आप को एक रईस बतलाता है, पर अंत में वह अपनी गलती स्वीकार कर,एक नया दृष्टिकोण अपना कर हीनता की ग्रंथि से छुटकारा पा लेता है।

लघुकथा में शब्दों के संयोजन से भाषा शैली में अद्भुत सौन्दर्य पैदा करना इस लघुकथा की विशेषता है। एक उदाहरण पेश है-

"दोनों की आँखों में आसमान के मेघ उतर आए। रोहन बारिश की बूँदों के बहाने से अपनी आँखें साफ करके बोला।"

'कुदूस' उनकी एक अन्य सुन्दर लघुकथा है, जिसमें कुदूस नामक मुस्लिम बच्चा अपनी दादी का कंधा हिला हिलाकर बोलता है। ''दादी मत रो मेरी मैडम कहती है, अल्लाह और कान्हा दोनों ही रहमान हैं, दोनों अंदर से बिल्कुल एक समान हैं, बस नाम का फर्क है।'' आज के युग में जब धर्मान्धता सिर पर चढ़कर बोली रही है, यह लघुकथा एक मरहम का काम करती है।

'क्या-क्या करूँ' बच्चों के मनोविज्ञान पर आधारित लघुकथा बालमन की दुविधा को उजागर करती है।

'कड़ी' नामक लघुकथा में संवेदना की पराकाष्ठा है। आज के इस समय में जहाँ भाई-भाई को नहीं पूछता, बेटा बूढ़े माँ-बाप को घर से निकाल देता है वहाँ एक ट्रेफिक पुलिसवाला चिलचिलाती धूप में नंगे पैर कचरा बीनने वाले अबोध दो भाईयों के लिये मसीहा बनकर उनका सहारा बन जाता है।

'इन्द्रधनुष' लघुकथा भी गरीबी की त्रासदी से उपजी विडम्बना को उजागर करती सीधी सरल भाषा शैली की लघुकथा है। एक छतरी के लिए तरसते गरीब बिरजू को मजबूर माता-पिता जैसे तैसे छतरी दिला देते हैं, तो बच्चे की खुशी से चमकती आँखें माँ को खुशी से सरोबार कर देती है।

'सुकून' नामक लघुकथा में सुकून की परिभाषा कुछ नये अंदाज से की गई है। भाषा के प्रति सजग वीणा को बड़ा सुकून मिला जब एक डिलीवरी बाय ने सुसंस्कृत भाषा का प्रयोग किया।

"डस्टबीन" एक घरेलु हिंसा की शिकार माँ की व्यथा-कथा है, जो पुरूष की ज्यादती को चुपचाप इसलिये सहन कर लेती है, कि घर में शान्ति बनी रहे। पुरूष द्वारा बार-बार किये अपमान से स्त्री मन टूटे काँच किरचन सा किरचता रहता है। टूटे काँच की किरचन को प्रतीक बनकार लिखी यह लघुकथा सीधे मर्म पर चोट करती है।

'पुरूष' नामक लघुकथा में स्त्री को नदी और पुरूष को सागर के रूप में वर्णित करने में सुन्दर प्रतीक एवं बिम्ब का सहारा लिया गया है।

'सागर' के समान धीर-गंभीर और विशाल हृदय वाले पुरूष को ही स्त्री प्रेम करना पसंद करती है। और उसमें अंगीकृत होना चाहती है। यही 'पुरूष' लघुकथा का सार है।

'भ्रष्टाचार' कथा में भ्रष्टाचार को एक मानसिक बीमार बताकर नेताओं पर गहरा कटाक्ष किया गया है।

'नुकसान' लघुकथा इस कटु सत्य को उजागर करती है कि इस व्यवहारिक जगत में अधिक उदार हृदय वाला व्यक्ति कई बार अपना ही नुकसान कर लेता है।

'चौराहा' लघुकथा महानगरों में बदलते शहरों की ट्रैफिक समस्या की ओर इशारा करती है।

'बारिश की बूँदें' में किन्नरों पर तीन लघुकथाएँ रंभा, दस रुपये, असबाब लिखी गई हैं। तीनों में ही किन्नरों की बेबसी, मायूसी, बेचारगी दर्शित हैं, पर खुशी की बात तो यह है कि तीनों लघुकथाओं में उनका उजला पक्ष यानि संवेदना का चरम बतलाकर पाठकों का दिल जीता गया है।

'क्रूर मानव' एक मानवेत्तर लघुकथा है, जिसमें एक मादा पक्षी की व्याकुलता तड़प कर मर्म को विचलित कर देती है जब एक मात्र बचे वृक्ष को काट दिया जाता है, जिस पर उसका बसेरा था।

'उमस' एक बढ़िया लघुकथा है। कथ्य भाषा शैली और सटीक शीर्षक के कारण यह एक सशक्त लघुकथा बन पडी है।

आजकल माता-पिता बच्चे को एक बँधी बंधाई जिन्दगी जीने को मजबूर कर रहे हैं। जिसमें उनका बचपन खो जाता है। इस बात से 'मीत' नामक बच्चे के दादा व्यथित रहते थे। मीत परीक्षा में प्रथम आता है, तो दादाजी के बढ़िया पुरस्कार के विकल्प में वह केवल चाकलेट माँगता है, और दादा जी सुकून की सांस लेते हैं कि अभी भी पोते में बचपन बचा है।

इसी प्रकार की उम्दा लघुकथा 'परिकल्पना' लघुकथा है जो धार्मिक उन्माद की परिकाष्ठा को दर्शाती है।

अब हम बात करते हैं लघुकथा के कलापक्ष की। कथानक , उल्लेख, भाषा, शिल्प, शैली, और पंच ये लघुकथा के मुख्य तत्व है। उदेश्य हीन लघुकथा महत्वहीन होती है।

निशा की लघुकथाओं के उद्देश्य पर बात करें तो पायेंगे वे इस मामले में खरी उतरती हैं। लघुकथा का मुख्य कार्य है आमजन के मन की संवेदनाओं को जागृत करना। यह कार्य लघुकथाएँ समाज की विसंगतियों को सामने लाकर करती है। उनकी लघुकथाओं में

कचरा बीनने वाले बच्चें की विवशता है (कड़ी), तो एक छोटी-सी माँग की पूर्ति उनकी आँखों की चमक बढ़ा देती है। (इंद्रधनुष) लघुकथा का कोई पात्र सीमित आय में ही खुशी ढूँढ लेता है (सुकून) तो कहीं एक पत्नी अपने नेता पति पर कटाक्ष करती है (भ्रष्टाचार)। कहीं नदी का निनाद है तो कहीं कटे वृक्ष के ठूँठ मानव के लालच को दर्शा रहे हैं। (ठूँठ)। चौराहा जैसी लघुकथा में मेट्रो सिटी के लोगों की परेशानियाँ है। रेप पर चर्चा है तो स्त्री आटो चालक की जिजिविषा की भी बात है। इस प्रकार निशा की लघुकथाएँ सीधे समाज से जुड़े मुद्दों से जुड़ी हैं और ये ही लघुकथाओं के कथ्य हैं।

अब बात करते हैं भाषा शैली और शिल्प की। इस संग्रह की अधिकांश लघुकथाएँ पारिवारिक और सामाजिकता के ताने-बाने में बुनी गई हैं और उसी के कारण भाषा सीधी सादी तथा बोधगम्य है। अधिकतर लघुकथाओं की शैली वर्णनात्मक है। संवाद शैली का खुलकर प्रयोग कथानक को बोधगम्य तथा रोचक बनाता है। लघुकथाओं में शब्दों का चयन शिल्प के सौन्दर्य को बढ़ाने में सहायक हुआ है। देखिए कुछ उदाहरण -

'और स्त्री को क्या चाहिए? एक धीर, गम्भीर पुरूष का साथ, जो उसे सम्पूर्णरूप से अंगीकार कर सके। 'पुरुष'

"उसके गालों को अश्रुओं ने अपनी राह बना ली। "

"आपकी अंगुलियाँ में चुभी हुई ये किरचने मेरे मन मस्तिष्क को लहुलुहान कर देती है। '' (किरचन)

"रूई के फाहे जैसे सफेद काया लिये बूढे बादलों के झुंड आसमान में भटक रहे थे। " (अनुभूति)

"काश कोई ऐसा हो जो मेरे लिये धरती और आसमान बने। " (मीत)

इन लघुकथाओं में कहीं-कहीं वाक्य संयोजन की श्रेष्ठता भी देखने को मिलती है। एक नज़ीर -

"माँ, तो क्या सूरज के अस्त होने के साथ एक लड़की का सोच विचार और स्वतंत्रता भी अस्त हो जाती है?"

अब मैं लघुकथाओं की कमियों की ओर भी ध्यान आकर्षित करना चाहती हूँ। लगभग सभी लघुकथाएँ छोटी कहानी का आवरण लिये हुए है। लघुकथाओं की संख्या बढ़ाने के लिये कई रचनाएँ साधारण कथ्य के कारण प्रभावशाली नहीं बन पड़ी। जींस, प्रयोगशाला, महिला दिवस, नकलची, वरदान, कश्ती, पोखरा का मेला, बाईक का मिजाज आदि साधारण लगी। कई लघुकथाएँ उपदेशात्मक हो गई। गिद्ध, सदाबहार इसी श्रेणी की हैं। 'निपटारा' लघुकथा का शीर्षक लघुकथा में कथानक से मेल नहीं खाता? 'ऑफर' अधिक सटीक होता। इस संग्रह की प्रतिनिधि लघुकथा अपना प्रभाव छोड़ने में सफल नहीं रही हैं।

इन छोटी-मोटी कमियों के बावजूद 'बारिश की बूँदें' पाठकों को अवश्य पसंद आएगी, ऐसी मुझे पूर्ण आशा है। मैं निशा जी के उज्जवल भविष्य की कामना करती हूँ अगला लघुकथा संग्रह और अधिक प्रभावशाली होगा।

समीक्षक: मनोरमा पंत, मो. 9229113195,

ईमेल : manoramapant33437@gmail.com

'पुस्तक का नाम: बारिश की बूँदे

लेखिका: निशा भास्कर, पालम, नई दिल्ली,

मो. 9868533100

विधा: लघुकथा

प्रकाशन: किताबघर प्रकाशन

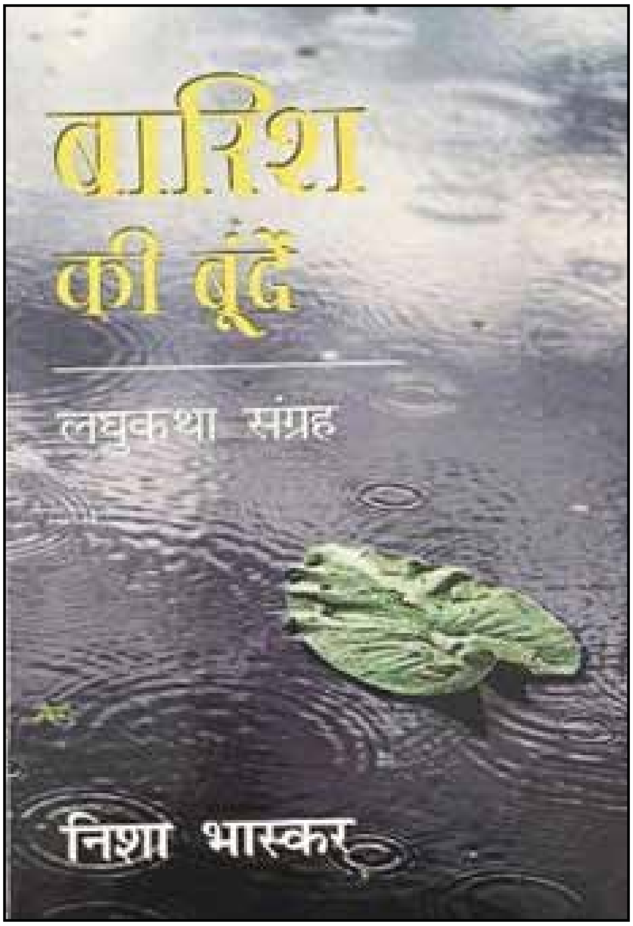

साक्षात्कार

लघुकथा मेरा जुनून है- संतोष श्रीवास्तव

डॉ. मिथिलेश दीक्षित

(लेखिका **संतोष श्रीवास्तव** से वरिष्ठ लेखिका **डॉ. मिथिलेश दीक्षित** की बातचीत)

डॉ. मिथिलेश दीक्षित: हिंदी में लघुकथा का उद्भव आप कब से मानते हैं और प्रथम लघुकथाकार का श्रेय किसको देते हैं?

संतोष श्रीवास्तव: विचारणीय प्रश्न है आपका। आज जब लघुकथा ने अपना मुकम्मल स्थान पा लिया है तो साहित्य जगत में खलबली मची है कि पहली लघुकथा का स्थान किसे दिया जाए। इसमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण है प्रकाशन वर्ष और समय लेकिन वर्ष तो बहुत सारी लघुकथाओं के प्रकाशन का एक ही हो सकता है। मास,सप्ताह भी एक ही हो सकता है।

यह बड़ा पेचीदा काम है। कुछ इसकी शुरुआत छत्तीसगढ़ के प्रथम पत्रकार और कथाकार माधवराव सप्रे की लघुकथा "एक टोकरी भर मिट्टी" से मानते हैं। कुछ 1916 में सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की लघुकथा झलमला को मानते हैं। इसके लिए हमें लघुकथा के प्रकाशन काल का इतिहास खंगालना पड़ेगा।

भारतेंदु हरिश्चंद्र की "अंगहीन धनी "और "अद्भुत संवाद कथाएं" 1876 में परिहासिनी में प्रकाशित हुई।

माधवराव सप्रे की" एक टोकरी भर मिट्टी" छत्तीसगढ़ मित्र में 1901 में, छबीलेलाल गोस्वामी की "विमाता" सरस्वती में 1915 में, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की "झलमला" सरस्वती में 1916 में, जगदीश चंद्र मिश्र की "बूढ़ा व्यापारी "सरस्वती में 1919 में, जयशंकर प्रसाद की "गुदड़ी में लाल "प्रतिध्वनि में 1926 में प्रकाशित हुई। उनकी अन्य लघुकथाएं गूदड़ साईं, पत्थर की पुकार, उस पार का योगी, करुणा की विजय, खंडहर की लिपि, कलावती की शिक्षा ,चक्रवर्ती का स्तंभ सभी प्रतिध्वनी में 1926 में प्रकाशित हुई। प्रेमचंद की "बाबाजी का भोग" प्रेम प्रतिमा में 1926 में, जयशंकर प्रसाद की "बैरागी "आकाशदीप में 1929 में तथा कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर की "सेठजी" 1929 में प्रकाशित हुई। इन लघुकथाओ को प्रथम हिंदी की लघुकथा के आधारभूत तत्व या मानक तत्वों की दृष्टि से देखने से पहले उन लघुकथाओं को भी खंगालना आवश्यक है जिन्हें आधारभूत तत्व में खरा कहा जाता है। जैसे-जैसे हिंदी लघुकथा का विधा परक रूप स्पष्ट हुआ,

संतोष श्रीवास्तव

मान्य वैसे-वैसे पहली हिन्दी लघुकथा की चिंता भी उत्पन्न हो गई। समाज द्वारा लघुकथा विधा को बहुत लोकप्रियता मिलने के तहत अकादमियों में इसका प्रवेश निश्चित हो गया और उससे पठन-पाठन शोध एवं अध्ययन के रास्ते खुल गए। लेकिन इसके लिए निश्चित तौर तरीके और अनुशासन भी तय किए गए। इसी के अंतर्गत प्रथम हिंदी लघुकथा की खोज आज भी शोध का विषय है।

डॉ. मिथिलेश दीक्षित: लघुकथा की विकास-यात्रा के परिप्रेक्ष्य में इसके वर्तमान स्वरूप पर प्रकाश डालें।

संतोष श्रीवास्तव: पिछले दशकों से अब तक लघुकथा ने निरंतर विकास के सोपान चढ़े। हिंदी की अन्य सभी विधाओं की तुलना में अधिक लघु आकार होने के कारण यह समकालीन पाठकों के ज्यादा करीब है और सिर्फ इतना ही नहीं यह अपनी विधागत सरोकार की दृष्टि से भी एक पूर्ण विधा के रूप में हिंदी जगत में गहरे जड़ें जमा रही है।

इसे स्थापित करने में जितना हाथ लघुकथाकारों का रहा है उतना ही कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, बलराम, डॉ सतीशराज पुष्करना, सतीश राठी आदि संपादकों का भी रहा है। खास कर लघुपत्रिकाओं के संपादकों का।

लघुकथा में कुछ उल्लेखनीय कार्य भी हुए ,नए प्रयोग भी। जैसे डॉ सतीश राज पुष्करणा जी के संपादन में "बहस के चौराहे पर" लघुकथा के आलोचनात्मक आलेखों की यह पहली पुस्तक है जो 1983 में प्रकाशित हुई। लघुकथा की तत्कालीन

मान्यताओं को देखते हुए यह एक ऐतिहासिक कार्य था। उसमें दी गई मान्यताओं को समय-समय पर संशोधित कर दिया गया लेकिन उस तरह का शास्त्रीय और सुनियोजित कार्य दोबारा नहीं हुआ। बरेली सम्मेलन 11, 12 फरवरी 1979 में लघुकथा पाठ के बाद त्वरित समीक्षा का प्रयोग किया गया। पूरी चर्चा को रिकॉर्ड करके ज्यों का त्यों प्रकाशित कर दिया गया। खरी-खरी बात बहुत से लघु मानसिकता के रचनाकारों को अच्छी नहीं लगी।

आज तक बहुत से सम्मेलनों में लघुकथा पर सार्थक चर्चा परिचर्चा हो चुकी है। लेकिन प्रकाशन में सारी बातें हवा में खो जाती हैं। तत्पश्चात, हिंदी लघुकथा का सौंदर्यशास्त्र, कथादेश सर्जना और समीक्षा, वर्तमान लघुकथा आदि पत्रिकाओं ने लघुकथा पर विशेषांक निकाले।

लघुकथा के क्षेत्र में मधुदीप जी की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है उन्होंने स्वयं के संपादन में और अन्य लोगों के संपादन में पड़ाव और पड़ताल के 30 खंड निकाले हैं।

लघुकथा विमर्श संपादक डॉ राम कुमार घोटड के साक्षात्कार कुछ असहमति के साथ एक सार्थक प्रयास है। "हरियाणा की लघुकथा" डॉ रूप देवगन ने हरियाणा के 51 लघुकथाकारों को हरियाणा में लघुकथा की विकास यात्रा के साथ प्रस्तुत किया है।

वर्तमान समय में मानवेतर लघुकथाओं को लेकर भी कई अंक निकाले गए। और पुस्तकें छपी। हरियाणा सिरसा से राजकुमार निजात ने दिव्यांगजन साहित्य पर आधारित लघुकथा संकलन "हौसलों की लघु कथाएं "प्रकाशित की है जो अपने आप में एक नया प्रयोग है क्योंकि अभी तक दिव्यांगों पर आधारित पूरा का पूरा लघुकथा संकलन नहीं के बराबर है। इस लघुकथा संकलन में मेरी भी दो लघुकथा शामिल हैं। दो बूंद आंसू और गूंगी। यह दोनों लघुकथाएं राजकुमार निजात द्वारा दिए हुए विषय दिव्यांग पर आधारित है। यह दोनों लघुकथाएं काफी चर्चित हुई और इन पर पुस्तक समीक्षा में खास ध्यान दिया गया।

डॉ. मिथिलेश दीक्षित: आपकी दृष्टि में हिन्दी के कथात्मक साहित्य में लघुकथा का क्या स्थान है?

संतोष श्रीवास्तव: लघुकथा ने पिछले दशकों से अब तक अपने लिए एक सुदृढ़ जमीन रची है। पहले पत्रिकाओं में मात्र फिलर के रूप में इस्तेमाल होने वाली लघुकथा अब कथात्मक साहित्य में अपनी जगह बना चुकी है और इसका पूरा श्रेय जाता है पत्रिकाओं के संपादकों को और विभिन्न साहित्यिक संस्थाओ द्वारा लघुकथा पर आयोजित सम्मेलनो को। जब मैं मुम्बई टाइम्स ऑफ इंडिया में पत्रकार थी। वहाँ से सारिका, धर्मयुग, माधुरी पत्रिका निकलती थी। अक्सर इन पत्रिकाओं में लघुकथा को फिलर के रूप में लिया जाता था। तब मैंने लघुकथा के विधान को समझा। मुझे लगा लघुकथा अपने आप में एक महत्वपूर्ण विधा है जिसका कलेवर छोटा है पर सोच व्यापक। उन्हीं दिनों सारिका के संपादक कमलेश्वर जी ने लघुकथा अंक निकाला। जिसमें संपादन सहयोगी मंडल में मैं भी थी। ढेरों लघुकथाएँ आईं पर अधिकतर व्यंग्य से जुड़ी। व्यंग्य प्रधान लघुकथाएँ हरिशंकर परसाई जी ने भी लिखी। पर उन्हें छोटे-छोटे व्यंग्य कहना उचित है लघुकथा नहीं। सारिका का लघुकथा अंक पाठकों के बीच विशेष जगह नहीं बना पाया। दशक आठवाँ था और लघुकथा अपनी जगह बनाने के लिए संघर्षरत। कमलेश्वर जी ने लघुकथा आंदोलन में लघुकथाकारों को वरीयता दी। और उसे यथार्थ की जमीन मिली। कथ्य की विविधता को लेकर लघुकथा में शैली के स्तर पर व्यापक प्रयोग हुए। भाषा के गठन में बदलाव आया।

सारिका ने फिर जोखिम उठाया और श्रेष्ठ लघुकथाएं और समांतर लघुकथाओं के अंक निकाले। इन विशेषांकों ने लघुकथा को चरमोत्कर्ष के ठिकाने दिखाए। पाठक भी बटोरे। मेरी सारिका में छपी पहली लघुकथा "गलत पता" पर दूरदर्शन के लघु फिल्म निर्माता रवि मिश्रा की नजर पड़ी और उस पर फिल्म बनी जो मेट्रो चैनल पर प्रसारित हुई। इस फिल्म ने लघुकथा की ओर मेरा रुझान पैदा किया और तब से सिलसिला जारी है।

लघुकथा कभी भी उपेक्षित नहीं रही। यह बात दीगर है कि इस विधा की ओर लेखकों का ध्यान धीरे-धीरे गया। पत्रिकाएँ भी लघुकथाओं को अपने कलेवर में स्थान देती रही और पुस्तकें भी प्रकाशित होती रही। मेरा तो लघुकथा की ओर ऐसा रुझान हुआ कि आलम यह था कि जिस भी पत्रिका में मेरी लघुकथा छपती पाठकों का खूब प्रतिसाद मिलता। मुझे लघुकथा लिखने में आनन्द आने लगा। तभी पटना से लघुकथा पुरोधा डॉ सतीश राज पुष्करणा का एक पोस्टकार्ड प्राप्त हुआ। " आपका चयन लघुकथा सारस्वत सम्मान के लिए किया गया है, कृपया स्वीकृति दें। "

मेरे लिए यह अचानक मिला बेहतरीन तोहफा था। यह आयोजन अखिल भारतीय लघुकथा सम्मेलन में अखिल भारतीय लघुकथा प्रचार प्रतिष्ठान के द्वारा किया जा रहा था। उस वर्ष दिल्ली में आयोजित विश्व पुस्तक मेले में मधुदीप जी से भी मिलना हुआ और संयोग कुछ ऐसा कि अगले वर्ष का लघुकथा सम्मान भी मेरी झोली में।

पटना से ही अखिल भारतीय प्रगतिशील लघुकथा मंच पटना द्वारा आयोजित लघुकथा सृजनश्री सम्मान के लिए मेरा चयन किया गया।

लघुकथा की पत्रिकाओं आरोह अवरोह,संरचना आदि में भी मेरे लघुकथा पर आधारित लेख और लघुकथाएँ डॉ. सतीश राज पुष्करणा और कमल चोपड़ा जी ने लगातार छापीं। मेरे सामने एक बड़ी चुनौती आ गई कि क्या मुझे अपने लेखन को पूरा लघुकथा की ओर ही मोड़ना पड़ेगा? पंजाबी की लघुकथा की पत्रिका मिन्नी में भी मेरी लघुकथाएं श्याम सुंदर अग्रवाल द्वारा अनुवाद करके प्रकाशित की गई। श्याम सुंदर अग्रवाल जी ने मुझे अंबाला में होने वाले लघुकथा सम्मेलन में आमंत्रित भी किया पर मैं जा नहीं पाई।

डॉ. मिथिलेश दीक्षित: लघुकथा के स्वरुप, स्तर और विकास में सोशल मिडिया की क्या भूमिका है?

संतोष श्रीवास्तव: वर्तमान समय सोशल मीडिया का समय है। व्हाट्सएप, फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम ,ब्लॉग जैसी सोशल मीडिया की भूमि पर निरंतर रचनाएं रची जाती हैं, पढ़ी जाती हैं और लाखों पाठकों तक पहुंचती हैं। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का यह सबसे गतिशील माध्यम है।

लघुकथा पर आधारित कई फेसबुक पेज और फेसबुक ग्रुप क्रियाशील हैं। किताबों की दुनिया में पाठकों की कमी की बात अकसर उठती रही है। इसकी रही सही कसर अब सोशल मीडिया ने पूरी कर दी है। सोशल मीडिया के साथ अन्य तरह के गैजेट भी जुड़ गए हैं। आम राय है कि सोशल मीडिया साहित्य को समृद्ध कर रहा है लेकिन स्थापित लेखकों का मत है कि यह पतन की ओर ले जा रहा है, क्योंकि इससे किताबें पढ़ने की ललक निरंतर कम होती जा रही है। हालांकि सोशल मीडिया पर कुछ स्थापित साहित्यकार भी मौजूद हैं, वे लगातार अपनी सक्रियता से सार्थक हस्तक्षेप कर रहे हैं। इसके साथ ही कुछ नए लोग भी हैं जिन्होंने अभी-अभी लिखना शुरू किया है, वे लगातार अपनी रचनाएं यहाँ साझा करते हैं। कहना चाहिए कि वर्तमान समय में कई लोग हिंदी की पत्रिकाओं की मार्फत नहीं, बल्कि सोशल मीडिया के जरिए ही स्वयं को स्थापित करने में सफल हुए हैं।

मेरा मानना है कि जिस तेजी से युवा लघुकथाकार लघुकथाएं लिख रहे हैं इससे उनको एक बेहतर जमीन मिली है और अपनी बात रखने की आजादी भी मिली है क्योंकि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में संपादक जरूरी नहीं है कि उनकी रचनाएं छापें या उनकी किताबें प्रकाशक छापें क्योंकि आजकल पैसे लेकर किताब छपने का चलन चल चुका है और बड़े-बड़े प्रकाशक जो बिना पैसे लिए छापते हैं नए लेखकों को बहुत कम तवज्जो देते हैं।

लेकिन साथ ही यह भी बात विचारणीय है कि सोशल मीडिया से गम्भीर साहित्य का नुकसान भी हो रहा है। पाठक अब किताबों और पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाओं को खास तवज्जो नहीं देते। बड़ी से बड़ी रचना पर बधाई संदेश मैसेंजर, मेल या वाट्सएप में आने लगे हैं। उन पर कोई गहरा विश्लेषण या विस्तृत प्रतिक्रिया दुर्लभ होती जा रही है। पाठकों ने जैसे लेखन की गहराई में जाना छोड़ दिया है। सारा समय तो सोशल मीडिया पर सूचनाओं को प्राप्त करने या देने में ही चला जा रहा है। गम्भीर साहित्यिक चर्चाएं जो जगह-जगह हुआ करती थीं, वो भी कम नज़र आ रही हैं।

जहाँ तक सवाल सोशल मीडिया के नकारात्मक प्रभाव का है। मेरा मानना है कि हर चीज के दो पहलू होते हैं। देखने वाली बात ये है कि लेखन किस माध्यम से हो रहा है, लेखक अपने लिखे के लिए जिम्मेदार है। असल बात लिखे गए कथन की गुणवत्ता की है, माध्यम की नहीं। और गुणवत्ता लेखक की चेतना पर निर्भर करती है। कोई लेखक यदि महत्ववपूर्ण बात कह रहा है, तो सोशल मीडिया उसे एक मंच प्रदान कर रहा है। फिर चाहे लघुकथा हो कविता और कहानी हो या उपन्यास हो। आजकल तो संस्मरण भी फेसबुक पर पढ़ने मिल जाते हैं। और इससे जानकारियां ही बढ़ती है घटती नहीं।

डॉ. मिथिलेश दीक्षित: लघुकथा की वर्तमान स्थिति से आप कहाँ तक संतुष्ट हैं?

संतोष श्रीवास्तव: सन 2017 से मैंने "सीप में समुद्र" लघुकथा संग्रह पुस्तक को संपादित करने का कार्य आरंभ किया, जो पुस्तक रूप में प्रकाशित होकर 2018 के उत्तरार्ध में मेरे हाथ आया। सहयोगी संपादक काँता राय थीं। इस संग्रह में देशभर के लघुकथाकारों की लघुकथाओं को हमने आमंत्रित कर उनपर बारीकी से काम किया। मेरे सामने चुनौती थी कि यह लघुकथाएं अगर इसमें प्रकाशित होती हैं तो वह लघुकथा के मानक में दुरुस्त होनी चाहिए इन लघुकथाओं में कनिष्ठ और वरिष्ठ लेखकों की लघुकथाओं से गुजरते हुए मैंने पाया कि जहाँ एक ओर वरिष्ठ लेखकों की लघुकथाओं ने मुझे प्रभावित किया वहीं नए लेखकों की लघुकथाओं ने कई प्रश्न चिन्ह मेरे दिमाग में खड़े कर दिये।

लघुकथा लेखन तो बहुत हो रहा है पर कथ्य की ताजगी कम दिखाई दे रही है। खासकर महिला लघुकथाकारों की लघुकथाओं में। वही घिसे पिटे कथानक, पितृसत्ता, असुरक्षा स्त्री लेखन के इर्द-

गिर्द चक्कर लगाती लघुकथाएं। तो मुझे लगा कि लघुकथाओं पर काम तो बहुत हो रहा है लेकिन स्थिति चिंताजनक भी है। जैसा कि संरचना के संपादकीय में कमल चोपड़ा जी ने चिंता प्रकट की है कि एकाँगी और लघु आकारीय होने के कारण सतही लेखन की वजह से लघुकथा पर भी प्रश्नचिन्ह लगना स्वाभाविक है। सतही लेखन की चुनौती को लघुकथा लेखकों और संपादकों को गंभीरता से लेना होगा। इसके लिए सही और सार्थक लेखन के फर्क को समझना आवश्यक है। आज किसी भी युवा रचनाकार का परिचय पढ़िए तो चालीस पचास पुरस्कार उसे मिल चुके हैं। लगभग इतनी ही किताबें भी प्रकाशित हो चुकी हैं। कस्तूरी मृग के समान यह अंधी दौड़ है जिसका असर लेखन पर पड़ रहा है।

मेरा मानना है लिखना एक तपस्या है, चिंतन मनन है और गंभीरता है। लेखन की प्रतिबद्धता शब्दों की गूढ़ता, विचारों की तीक्ष्णता और संवेदना की तीव्रता साहित्य को समृद्ध करती है।

लघुकथा का तेजी से प्रादुर्भाव बहुत अधिक संख्या में उसका प्रकाशन, शोध शिविर और साहित्यिक सम्मेलनों में अपना स्थान बना लेने की ओर ध्यान खींचने का काम तो लघुकथा कर रही है लेकिन संदेह इस बात का भी है कि किसी भी चीज की अधिकता उसके प्रति मनुष्य का आकर्षण समाप्त कर देती है। लघु कथा लिखी जाती रहे पर सारगर्भित हो ताकि यह सिद्ध हो कि "देखन में छोटे लगे घाव करे गंभीर"

डॉ. मिथिलेश दीक्षित, जी-91,सी, संजय गान्धी पुरम, लखनऊ-226016 (उ.प्र.)

संतोष श्रीवास्तव, मो. 9769023188, Email: kalamakar.santosh@gmail.com

लघुकथा

माफीनामा

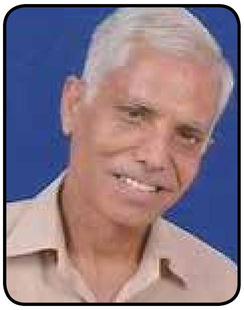

सुरेंद्र कुमार अरोड़ा

"कोई और माल दिखाइए?"

"इसमें कोई कमी तो है नहीं, बिलकुल ताजा है।"

"छोड़ो भाई। कोई बढ़िया माल हो तो दिखाइए।"

"पैसे कुछ ज्यादा लगेंगे।"

"पैसों की चिंता मत कीजिए। बस माल में दम होना चाहिए।"

"कितने साल तक की हो?"

"साल-वाल की बात नहीं है, बात मजे की है, वो आना चाहिए।"

"खूबसूरती वगैरह ?"

"ठीक-ठीक हो पर स्लिम भरपूर होनी चाहिए। चेहरा मोहरा फोटोजनिक ही काफी है।"

"कोई और खास बात?"

"हाँ ! अपना उसूल है कि माल अपनी बिरादरी की नहीं होना चाहिए।"

"तब तो थोड़ा इंतजार करना पड़ेगा। खबर आ चुकी है। माल कल तक पहुँचेगा।"

"पल का भरोसा नहीं, तुम कल की बात कर रहे हो मियां। इंतजार नामुमकिन है।"

"आज तो मुश्किल है जनाब।"

"अमां मन की सेज बेताबी से सजी है, थैली खुली हुई है। जितना चाहे निकाल लो। जो हाजिर है उसे ही भेज दो। ऊपर वाले से माफ़ी माँग लेंगे।"

माल रवाना होते ही माफीनामा भी तैयार करवा दिया गया।

—साहिबाबाद, मो. 9911127277

लघुकथा

बसेसर बाबू

अनिल शूर आज़ाद

घड़ी की सुइयां रात्रि के मौन को भंग करती हुई आगे बढ़ रही हैं। रात्रि के लगभग साढ़े ग्यारह बजे हैं, लेकिन नींद बसेसर बाबू से अभी कोसों दूर है। इस बीच उनकी बूढ़ी हो रही आँखें अंधेरे की कुछ-कुछ अभ्यस्त हो चली हैं। अंधकार के बावजूद कमरे में एक मद्धम सी रौशनी भी है। इसमें वे कमरे में मौजूद एक-एक चीज़ को देख सकते हैं।

कुछ ऐसी ही रौशनी उनके स्मृति-पटल पर भी कार्य कर रही है। बसेसर बाबू का नौकरी के लिए शहर चले आना... फिर नीरू, मोहन और विजय। पहले माता और फिर वृद्ध पिता का गांव में स्वर्गवास... और उसके बाद तो उन्होने गांव से बिल्कुल ही सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। गांव की हवेली बेचकर शहर में इस डेढ़ कमरे का जो जुगाड़ बिठाया तो तबसे डेढ़ कमरा ही चला आ रहा है।

अब तो बच्चे भी बड़े हो चले हैं। नीरू और मोहन तो कॉलेज जाते हैं। विजय अभी मैट्रिक पढ़ रहा है। और परबतिया... सहसा बसेसर बाबू कोहनियों के बल जरा उठकर, अधलेटे-अधबैठे से होकर बड़ी हसरत से परबतिया को निहारते हैं। नून-तेल के झंझटों ने ऐसा उलझाया कि कब उनके और परबतिया के बीच दो-तीन खाटें और आ बिछी, इसका उन्हें पता ही नहीं चला।

वे... नीरू, मोहन और विजय की चारपाईयों के पीछे, दूर कोने में ढीली सी खटिया पर सोई परबतिया को बड़े ध्यान से देखते हैं। क्या यही उनकी बरसों की साथिन है ! अचानक कई मधुर यादें उन्हें पुलकित कर जाती हैं। किन्तु अगले ही पल वे उदास हो जाते हैं। वक्त कितना निर्मम है। इंसान को कितना बदल देता है यह। आदमी चाहे लाख शक्तिमान होने का दम भर ले, वक्त के आगे वह खिलौना ही है।

अचानक वह अपने बैड के साथ लगा स्विच 'ऑन' कर देते हैं। सारा कमरा दूधिया प्रकाश से नहा उठा है। किसी अजानी आशंका के वश वे तुरंत स्विच 'ऑफ' भी कर देते हैं। शीघ्र ही वे पुन: स्विच 'ऑन' करते हैं। सोई हुई परबतिया दूधिया प्रकाश में कितनी भली लग रही है। वे एक नजर अपने बच्चों पर डालते हैं। दुनिया मानती है बच्चे वृद्ध माता-पिता का सहारा बनते हैं। हुंह, बकते हैं सबके सब। स्वयं वे कितना सहारा बने अपने माँ-बाप का !

सहसा उनका मन कसैला होने लगा है। उनके हृदय में एकाएक विरक्ति के भाव उमड़ने लगते हैं। फरेब है यह दुनिया। तभी उनकी विचार-शृंखला टूटती है। नीरू ने उन्हे टोका है- 'पापा, आप सोये नहीं अब तक ?'

'बस, सो ही रहा था। ' कहते स्विच 'ऑफ' कर वे पुनः सोने का असफल-सा उपक्रम करने लगते हैं। घड़ी की सुइयां अभी भी मंथर गति से आगे बढ़ रही हैं। टिक..टिक..टिक..टिक..।

नई दिल्ली, मो. 9871357136

लघुकथा

अनाम रिश्ते

रशीद ग़ौरी

एक भिखारी ने उसे पुकारा- " बेटी सुनों... दस रुपए दो ना ! भूखा हूँ...। "

भिखारी द्वारा इस तरह बेटी कहकर पुकारना उसे अच्छा लगा। उसने कम उम्र में ही अपने माता-पिता को एक एक्सीडेंट में खो दिया था और वह उनके प्यार-स्नेह से वंचित रह गई...।

बेटी संबोधन से भिखारी ने फिर पुकारा- " बेटी... !"

उसका मन भीग गया। उसने भिखारी को सौ रुपए का नोट पकड़ाते हुए कहा- "लीजिए पिताजी... !"

भिखारी उसका मुँह देखता रह गया। उसे आज तक किसी ने भी इस तरह पिताजी कह कर नहीं पुकारा था। सभी उसे दुत्कारते।

पिताजी और बेटी के संबोधन ने एक-दूसरे के भीतर अनाम-अदृश्य रिश्ते के एहसास भरे मीठे झरने बहा दिए।

सोजत सिटी, राजस्थान

लघुकथा

अजन्मी

पूजा अग्निहोत्री

"ओये, तू इतनी उदास क्यों है आज ?"

"ऊपर मैंने सुन रखा था यहाँ के लोग बहुत दुष्ट और स्वार्थी होते हैं, आज देख भी लिया।"

"पगलू, कैसे देख लिया ?"

"वो आज जब माँ...."

"पहले मेरी बात सुन, अभी हम दुनिया की सबसे सुरक्षित जगह पर हैं, अपनी माँ के गर्भ में, समझी ?"

"जानती हूँ।"

"फिर इतनी परेशान क्यों है, हमारे माँ-पिताजी हैं न सब सम्हाल लेंगे।"

"नही, वो हम दोनों को मरवाने वाले हैं।"

"क्या ! तुझे कैसे पता ?"

"दोपहर को जब तू सो गई थी न, तब माँ-पिताजी डॉक्टर के पास गये थे ये पता करने की गर्भ में बेटा है या बेटी ?"

"हाँ, फिर ?"

"डॉक्टर ने बताया जुड़वा बेटियाँ हैं।"

"हौ......"

"फिर पिताजी ने कहा, मैं तीन-तीन बच्चों को नहीं पाल सकता डॉक्टर साहब।"

"तीन कहाँ पागल हम तो दो ही हैं न ?"

"हमारे बाद भी उन्हें पुत्र पैदा करना पड़ेगा न, पिण्डदान के लिये।"

"फिर आगे क्या कहा पिताजी ने ?"

"पिताजी ने कहा, एक बेटी को निकाल दीजिये हम एक अफोर्ड कर लेंगे।"

"फिर डॉक्टर ने कहा ऐसे में दूसरा बच्चा दिमाग से या शरीर से या फिर दोनों से विकलांग भी हो सकता है।"

"तब माँ ने कहा, आप दोनों अबॉर्ट कर दीजिये डॉक्टर साहब, हम कौन सा अभी बूढ़े हो गये हैं फिर कंसीव कर लेंगे।"

"फिर ?"

"डॉक्टर ने कल सुबह बुलाया है माँ को।"

"मतलब कल हम दोनों......."

"मार डाले जायेंगे, वो भी दुनिया की सबसे सुरक्षित जगह।"

कहकर दोनों आपस में गले लगकर बिलख पड़ीं।

–बिजुरी, मध्य प्रदेश, मो. 7987219458

लघुकथा

फ्लॉप-शो

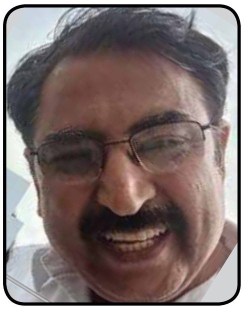

डॉ. प्रद्युम्न भल्ला

बॉस ने शर्मा जी को बुलाया था। "शर्मा जी, कल से अपने यहाँ सौ लोगों का प्रशिक्षण आरम्भ हो रहा है। सारा कार्य आपको ही देखना है क्योंकि सभी सदस्यों में से आप ही सबसे अधिक सक्षम व कर्मठ हैं"।

"धन्यवाद सर, आपने मुझे इस लायक समझा" शर्मा जी बोले।

शर्मा जी के जाते ही बॉस ने वर्मा को बुलाकर कहा- "इस शर्मा पर नज़र रखना, यह बहुत बेईमान और मक्कार है"।

"मगर सर, वह तो बाहर कह रहा था कि बॉस की यह चाल कामयाब नहीं होगी। काम लेने को इसका चेहरा अलग होता है मगर इसका व्यवहार बिल्कुल घटिया है। खुद तो खाता है, दूसरों को जेब से खर्च हुए पैसे भी नहीं देता"। वर्मा ने खुलासा किया।

"क्या ! बॉस ने हैरानी से कहा।

"जी हाँ, वो ये भी कह रहा था कि बास खुद को सुधार ले वरना सभी उसकी शिकायत ऊपर कर देंगे"। - वर्मा बोला।

"क्या कह रहे हो ?- बॉस बोला।

"मैं सच कह रहा हूँ, अगर आप इस प्रशिक्षण को फ्लॉप-शो में नहीं बदलना चाहते तो अपनी आँख मूंद लें और काम करने वालो को फ्री हैंड दें" वर्मा ने समझाया।

"तुम ठीक कहते हो" बॉस ने टाई की नॉट खोलते हुए कहा।

कैथल हरियाणा, मो. 9812091069

लघुकथा

जीने की वजह

पवित्रा अग्रवाल

“ताऊ जी आप बार-बार मेरी शादी के विषय में बात करते हैं, इतनी भी जल्दी क्या है ? मैं शादी के लिए मना नहीं कर रही पर मुझ लंगड़ी से शादी करेगा कौन ? कोई मिल भी गया तो मुझे उसके साथ जाना पड़ेगा पर मैं आपको किस के सहारे छोड़ जाऊँगी ?"

"बेटा अभी यह सब बातें छोड़, लड़का ढूँढ़ने में भी समय लगता है, पहले यह तो पता चले कि तुझे कैसा लड़का चाहिए ?"

"इस विषय में कभी नहीं सोचा ताऊ जी, सोचने की हिम्मत भी नहीं हुई। हर बार घर बाहर स्कूल में उपेक्षा, साथियों के व्यंग्य वाणों की याद आहत करती रही है पर शिक्षित हो, कुछ काम धंधा करता हो, शराबी जुआरी न हो आंशिक विकलांग को प्राथमिकता दूँगी पर इसी कस्बे का हो क्यों कि मैं आपके आस पास रहना चाहूँगी, भले ही अलग रहूँ। पास रह कर आपका और आपके व्यापार का पहले की तरह ही ध्यान रख सकूँ, बस यही कुछ इच्छाएं हैं, बाकी अभी से क्या कह सकती हूँ ?"

"ठीक है बेटा अब इसी आधार पर तलाश करूँगा। 'जीवनसाथी मेट्रोमोनियल' में भी रजिस्ट्रेशन करा देता हूँ पर ऐसा मैच नहीं मिला तो ?”

"ताऊ जी, नहीं मिलेगा तो नहीं करूँगी पर आपसे दूर नहीं जाऊँगी। आप मेरे ताऊ जी ही नहीं मेरे माता- पिता दोनों हैं। माता पिता की करोना में मौत के बाद आप न होते तो मुझ विकलांग लड़की का क्या होता ?"... नम आँखों को पोंछते हुए उसने कहना जारी रखा “उस संकट की घड़ी में सब रिश्तेदार कन्नी काट गए थे, भाई भी शादी करके अमेरिका जा बसा था... उसने भी कोई सुध नहीं ली। ”

तरल आवाज में ताऊ जी ने कहा—“बेटा मैंने तुझ पर कोई एहसान नहीं किया है और अपने को बार-बार लंगड़ी या विकलांग मत कह, इस पर तो तू विजय पा चुकी है और मानसिक रुप से तो तू मुझसे भी ज्यादा स्ट्रोंग है। इस दुःख के समय में तूने अपने साथ मुझे ,मेरे घर और व्यापार को भी संभाला है। ...बच्चे थे नहीं, तेरी ताई भी नहीं रहीं... तुझे ले आया तो मुझे भी जीने की वजह मिल गई वरना....

मो. 9393385447

ईमेल - agarwalpavitra78@Gmail.com

लघुकथा

नारायण

डॉ. संजय रॉय

विमान से नेताजी के उतरते हीं पूरा इलाका जिंदाबाद के नारों से गूँज उठा ! फूलमालाओं से लोगों ने उन्हें लाद दिया !

उनके चेहरे की चमक देखने लायक थी ! रेड कारपेट पर फूलों की बर्षा हो रही थी ! वो मुस्कुराते हुए लोगों का अभिवादन स्वीकारते हुए मंच की ओर बढ़ रहे थे ! कुछ ही देर बाद मंच से अपने भाषण में कहा, "मैं धन्य हूँ अपनी जन्मभूमि पर आपका प्यार पाकर... ! भाइयों और बहनों जिस तरह से आप लोगों ने तीसरी बार भी हमें आपकी सेवा करने का अवसर प्रदान किया है मैं एकबार पुनः आपसबों का आभार व्यक्त करता हूँ !"

यह दृश्य देख मंच से दूर खड़े गदहे ने अपने साथी से कहा, "मेरे दादाजी ठीक ही कहते थे, सचमुच राजनीति नर से नारायण बना सकती है... !"

उसके साथी ने कहा, “मैं समझा नहीं... ?”

"अरे यार अभी भी नेताजी को नहीं पहचाना ? भूल गए वो तालाब... नेताजी की वो पुरानी साईकिल... और वो कपड़ो का भाड़ी-भड़कम गट्ठर.... याद करो... नेताजी पहली बार पैदल ही आये थे, दूसरी बार चार चक्के से... और तीसरी बार सीधे वायु मार्ग से... !"

इस पर खिलखिलाते हुए दूसरे ने कहा, "तो क्या हमलोग साक्षात् नारायण के दर्शन कर रहे हैं ?”

चेहरे पर अनगिनत सवाल तैरते हुए दोनों दृश्य आत्मसात कर रहे थे !

–पटना सिटी, मो. 94722 75526

लघुकथा

बीच का रास्ता

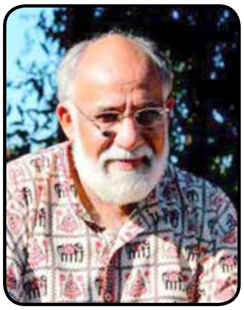

सूरज प्रकाश

- हाय, करुणा, आज कित्ते दिन बाद दिख रही है तू ? मुझे लगा या तो नौकरी बदल ली तूने या ट्रेन ?

- कुछ नहीं बदला शुभदा, सब कुछ वही है, बस जरा होम फ्रंट पर जूझ रही थी, इसलिए रोज़ ही ये ट्रेन मिस हो जाती थी।

- क्यों क्या हुआ ? सब ठीक तो है ना ?

- वही सास ससुर का पुराना लफड़ा। होम टाउन में अच्छा खासा घर है। पूरी जिंदगी वहीं गुज़ारने के बाद वहाँ अब मन नहीं लगता सो चले आते हैं यहाँ। हम दोनों की मामूली सी नौकरी, छोटा सा फ्लैट और तीन बच्चे। मैं तो कंटाल जाती हूँ उनके आने से। समझ में नहीं आता क्या करूँ।

- एक बात बता, तेरे ससुर क्या करते थे रिटायरमेंट से पहले ?

- सरकारी दफ्तर में स्टोर कीपर थे।

- उनकी सेहत कैसी है ?

- ठीक ही है।

- उन दोनों में से कोई बिस्तर पर तो नहीं है ?

- नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं है। बस, बुढ़ापे की परेशानियाँ है, बाकी तो...।

- और तेरा सरकारी मकान है। तेरे ही नाम है ना और तेरे हस्बैंड की तो प्राइवेट नौकरी है ?

- हाँ है तो ?

- और तेरे ससुर की पेंशन तो 5000 से ज्यादा ही होगी ?

- हाँ होगी कोई 7800 के करीब।

- बिलकुल ठीक। और तू रोज़ रोज़ के यहाँ उनके टिकने से बचना चाहती है ?

- चाहती तो हूँ, लेकिन मेरी चलती ही कहाँ है। घर में उनकी तरफदारी करने के लिए बैठा है ना श्रवण कुमार।

- अब तेरी ही चलेगी। एक काम कर। अपने ऑफिस में एक गुमनाम शिकायत डलवा दे कि तेरे नॉन डिपेंडेंट सास ससुर बिना ऑफिस की परमिशन के तेरे घर में रह रहे हैं। तेरे ऑफिस वाले तुझे एक मेमो इश्यू कर देंगे, बस। सास ससुर के सामने रोने धोने का नाटक कर देना कि किसी पड़ोसी ने शिकायत कर दी है। मैं क्या करूँ ? ऐसी हालत में वे जायेंगे ही।

- सच, क्या कोई ऐसा रूल है ?

- रूल है भी और नहीं भी। लेकिन इस मेमो से डर तो पैदा किया ही जा सकता है।

- लेकिन शिकायत डालेगा कौन ?

- अरे, टाइप करके खुद ही डाल दे। कहे तो मैं ही डाल दूँ। मैंने भी अपने सास–ससुर से ऐसे ही छुटकारा पाया है।

–मुंबई, मो. 9930991424

लघुकथा

फ़ैसला

सरला मेहता

"सलमा बेटी ! अब तुम स्कूल नहीं जाओगी। तुम्हारे दोनों जुड़वाँ भाइयों को भी इस साल भर्ती करवाना है। फ़िर कस्बे के बड़े स्कूल जाने के लिए जंगल से गुजरना होता है। " दादी ने ऐलान कर दिया।

सलमा का उदास चेहरा देख उसकी अम्मी बोली, "बस स्कूल की वर्दी और किताबों का ही खर्चा है। बाकी फ़ीस तो इसकी माफ़ है। हर साल कक्षा में अव्वल जो आती है। "

मासूम सलमा अपनी अम्मी से लिपट गई। सिसकते हुए उसने अपना फ़ैसला सुना दिया कि उसने सहेलियों के साथ मिलकर एक प्लान बनाया है। स्कूल से लौटते हुए वे जंगल से लकड़ियाँ बीन लाएंगी। और स्कूल जाते वक्त बेच देंगी। इस तरह पढाई का ख़र्चा अच्छे से निकल जाएगा।

दादी से मिन्नतें करते हुए सलमा बोली, "दादी ! आप मेरी पढ़ाई मत छुड़ाओ। मुझे जो वजीफ़ा मिलेगा न, घर-खर्च के लिए अम्मी-अब्बू को दे दूँगी। "

नमाज़ पढ़ते हुए दादी मुस्कुराने लगी। और अम्मी आँसू पोछते हुए किचन की ओर चल दी, कुछ मीठा बनाने के लिए।

इंदौर, मो. 9936189045

लघुकथा

मॉम ऑन लाइन डॉट कॉम

पूनम चंद्रलेखा

"छुट्टी न मिल पाने के कारण पोंगल पर अगर दोनों घर न जा पाए तो क्या हुआ ? मैं तो हूँ ही न। " सोचती हुई सुजाता ने 'कर्ड राइस' के लिए दही को बर्तन में डाल कर मानो अपनी यादों को ही फेंटना शुरू कर दिया था।

बेटे गीतांश को पहली बार घर से दूर मद्रास भेजने से पहले वह कितनी परेशान और बेचैन थी । यूँ इडली दोसा खाना बुरा नहीं लगता था उसे पर रोज़ रोज नहीं खा सकता था वह। बड़ी आंत में कमजोरी के चलते बाहर के खाने की मनाही, उस पर खाना बनाना आता नहीं था। वह भी तो नहीं जा सकती उसके साथ अपनी गृहस्थी छोड़ कर। माँ का दिल ! क्या करे ? किसकी सहायता ले ? किसी को भी तो नहीं जानती थी उस शहर में। बेचैन सुजाता की आँखें एक ना-पता से समाधान की तलाश में कंप्यूटर खंगाल रही थी कि उसकी नजर एक विज्ञापन पर पड़ी।

"क्या आप परेशान हैं बच्चे के खाने को लेकर ? होटल का खाना ? न बाबा न ! ! ! फिर कैसे खाएगा ? कोई चिंता नहीं... हम हैं न... अब आपके बच्चे को घर का, माँ के हाथ का बना ताज़ा, कम घी-तेल,कम मिर्च मसाले का खाना मिल सकता है... । हम करेंगे व्यवस्था... आपके सहयोग से... नाममात्र का शुल्क देकर। आज ही संपर्क करें- 'मॉम ऑन लाइन डॉट कॉम पर'। एक फोन नंबर दिया हुआ था।

जिज्ञासा वश सुजाता के हाथ फोन नंबर को डायल करने के लिए खुद ब खुद मोबाईल की ओर बढ़े ही थे कि भीतर से शंका तिलमिलाई –'बेवकूफी न कर सुजाता...जानती नहीं है क्या ऑनलाइन जालसाजी व गोरखधंधे के बारे में ? कैसा अजीब विज्ञापन है यह ...न कभी पढ़ा न सुना... लूटने का एक और नायाब तरीका...आये दिन तो अखबारों में ऐसे गोरखधंधों के बारे में निकलता रहता है...आकर्षक विज्ञापनों पर भरोसा करके तेरे जैसे भोले-भाले, जरुरतमन्द लोग फँस जाते हैं, फिर रोते हैं...

'हो सकता है कि यह विज्ञापन सही हो !' चिंतित माँ का दिल फुसफुसाया।

'बड़े शातिर होते हैं ये ऑनलाइन डकैत...' शंका फिर कुलबुलाई।

सुजाता ने सोचा कि वह नहीं फँसने वाली इनके मोहक जाल में... न बाबा न' पर, फिर सोचा 'हर्ज ही क्या है एक बार फोन करने में...सच झूठ का पता चल जाएगा...मामूली-सी तो रकम है...डूब भी गई तो क्या, एक अनुभव और सही...'

'मामूली सी रकम ही तो बड़ी बात है...यही तो सुनहरा जाल है...एक फोन करते ही तेरे मोबाइल की सारी सूचनाएं उनके हवाले... फिर करती रहना अनुभव...'शंका झुँझलाई।

'जो होगा देखा जाएगा...'और माँ का दिल जीत गया। फोन एक बार फिर उसके हाथ में था। शर्तों को जानने के बाद उसके आश्चर्य की सीमा ही न रही। "ऐसा भी हो सकता है !" - वह बुदबुदा उठी।

व्यर्थ ही संदेह कर रही थी। सब चोर थोड़े ही न हैं।

कंप्यूटर स्क्रीन पर उसकी आँखे पढ़ने लगीं "उसे किसी एक या दो बच्चों के भोजन की व्यवस्था का दायित्व लेना होगा अपने शहर में और बदले में उसके बच्चे के भोजन की व्यवस्था भी कोई माँ उस शहर में करेगी। " बस इतना ही करना था। तभी से गीतांश बिना किसी परेशानी के मद्रास में नौकरी कर रहा है, सेहतमंद है, खुश है और वह भी निश्चिंत। वह आजीवन उस ऑनलाइन वाली माँ की आभारी रहेगी, जिससे शर्तों के मुताबिक वह परिचित न थी, जो आज भी गीतांश को उसका गर्मा-गर्म मनपसंद उत्तर भारतीय खाना दोनों समय खिला रही है। उसकी सारी समस्या जैसे एक ही झटके में सुलझ गई।

दक्षिण भारतीय व्यंजन बनाने का शौक आज सुजाता के कितना काम आ रहा है, सोच कर हैरानी भरी खुशी हो रही थी उसे। उसने घड़ी पर निगाह डाली, "ओह ! बारह बज गए। विजयलक्ष्मी और वेंकटेश भी आते ही होंगे लंच करने। खुश हो जाएंगे दोनों अपना मनपसंद भोजन देख कर" सोच कर सुजाता दुगने उत्साह से भर जल्दी जल्दी हाथ चलाने लगी।

आत्मिक संतुष्टि के एहसास के साथ ही उसने रसोई का काम खत्म किया ही था कि घंटी बज उठी। सुजाता तेजी से दरवाजे की ओर लपकी मानों उसके अपने गीतांश और गौरी लंच करने आ गए हों।

"कोई आपके लिए करे और आप भी किसी दूसरे के लिए करें- यही सुकर्म है जो लौट कर आपके पास ही आता है" 'मॉम ऑनलाइन डॉट कॉम' वेबसाइट पर लिखे इन शब्दों ने उसी दिन से अनायास ही सुजाता का जीवन बदल दिया था।

मेरठ, मो. 8697993343, ईमेल: ppathak30@gmail.com

लघुकथा

हैसियत

डॉ. वर्षा महेश ' गरिमा '

"बाबूजी सुबह सरपंच काका को गैया चोरी की खबर दे आया था। उन्होंने थाने में रपट दर्ज कराने को कहा है आप कहो तो दोपहरी में कल्लू भईया के साथ थाने चला जाऊं। " मनोज ने हाथ घड़ी कलाई पर बांधते हुए बाबूजी से पूछा।

हुक्का सुड़कते बाबूजी ने मनोज को नजदीक बुलाकर कहा "ज़रूर जाओ बबुआ पर ये हाथ घड़ी और गले से चांदी की चेन उतार कर जाना,रपट लिखवाने जा रहे हो... हैसियत दिखाने नहीं।

मनोज बुड़बक सा बाबूजी की ओर देखने लगा।

–आईआईटी बॉम्बे पवई मुंबई, मो. 9987646713

लघुकथा

पतझड़ और बसंत

डॉ. सुनीता फड़नीस

बगीचे में आम्रवृक्ष और पीपल वृक्ष साथ में ही छोटे से बड़े हुए। आम को लोग उसके फलों की वज़ह से पसंद करते थे। वह घमंडी होने लगा था।

आम पीपल को बोला-"शिशिर ऋतु में तुम्हारी पर्णहीन देह को देखना बड़ा ही दुखद लगता है। सारी रौनक गायब हो जाती है"।

पीपल अपनी रौ में मस्त झूम रहा था।

बोला -"तुम्हारे स्नेहसिक्त शब्दों के लिए धन्यवाद मेरे दोस्त ! मैं बिल्कुल दुखी नहीं"।

"अरे ऐसे कैसे " ?

" देखो आम, सृष्टि ने छ: ऋतुओं का प्रारब्ध पहले से तय करके रखा है। कौन से वृक्ष पर कौन से फल कब उगेंगे ? कोंपलों का आना, पत्तों का हरे से पीले पड़ कर झड़ना, सब निश्चित है।

आम पीपल की बातें सुन रहा था।

"देखो दोस्त, हम सबकी जड़ें तो जमीन के अंदर समान है। फर्क सिर्फ जमीन से बाहर तना, शाखाएं, पत्ते, फूल, फल में होता है।

"लेकिन पीपल, तुम सच-सच बताओ, तुम्हें इस तरह पर्णहीन होकर दुख नहीं होता ? पक्षी चहचहाते नहीं, पत्ते हिलते नहीं"

पीपल बोला- "अरे नहीं, बिल्कुल नहीं ! हम मानव जैसे थोड़ी हैं। मानव तो उसकी स्थिति बदल जाऐ, कोई नुकसान हो जाऐ, एकदम विचलित हो जाता है, क्योंकि उसका अपने मन पर संयम नहीं है। वैसा हम पेड़ नहीं करते। जब तक हमारी जड़ें और तना मजबूत है। हम दुख नहीं मनाते। कुछ समय के लिए मेरे शरीर से पत्तों का भार कम हो जाता है और धरा को खाद भी मिल जाता है। वसंत ऋतु के स्वागत करने के लिए मेरी शाखों में कोंपलें फूटने लगती हैं"

आम अब पीपल के विचारों से सहमत होने लगा था।

"आम दोस्त, एक बात हमेशा याद रखना। तुम किसी को कितने प्रिय हो ? यह तुम्हारा फल बताता है। तुम्हारा बौर भी तो कभी-कभी जल कर खत्म हो जाता है। फिर लोग तुम पर भी ध्यान नहीं देते ना ? मैं भी जग के लिए बहुत काम करता हूँ। मेरे पेड़ से जो प्राणवायु मानव को मिलती है उसका कोई सानी नहीं। अभी वह वृक्ष काटकर अपना फ़ायदा देखने पर आमादा है, लेकिन एक दिन उसे उसकी ग़लती का एहसास होगा। जब प्राणवायु की कमी से उसके बच्चे हांफने लगेंगे और उन्हें ऑक्सिजन के सिलेंडर लेकर स्कूल जाना पड़ेगा।

आम पीपल के वृक्ष से सहमत हो चुका था।

वह समझ गया कि सभी के जीवन में पतझड़ के साथ बसंत भी आता है। उसकी एक डाल झुककर पीपल का आलिंगन करने लगी।

क्या आईडिया दिया है ! **मो., 9993340699**

लघुकथा

संपादकीय नीति

मार्टिन जॉन

"हैलो सर !"

उन्होंने कॉल रिसीव किया, "कहिए संपादकजी !"

"क्या शानदार कहानी लिखी है आपने इस बार भी। छपते ही चर्चित हो जाएगी। ... पत्रिका के अगले अंक में ले रहे हैं इसे। फोटो और परिचय तो हैं ही हमारे कार्यालय में।"

"सूचित करने के लिए धन्यवाद। .....लेकिन ज़रा ठहरिए !"

"जी, बोलिए सर !"

"वो कहानी मैंने अपने नाम से भेजी ज़रूर है, किन्तु मेरी लिखी हुई नहीं है।"

"सर, अच्छी दिल्लगी कर लेते हैं आप भी !"

"दिल्लगी नहीं है एडिटर महोदय, यही सच है।"

"तो फिर किसने लिखी ?"

"हमारे विश्वविद्यालय के एक शोधार्थी ने।"

"तो... उसमें आपका नाम ?"

"वो कहानी दो साल पहले उसने आपको भेजी थी। अभी तक उसे कोई ज़वाब नहीं मिला। ... तबसे वह मानकर चलता है कि पत्रिकाओं में नामवरों का 'कुछ भी' छप जाता है। जबकि नए नामों की बेहतरीन रचनाओं को बगैर पढ़े कूड़ेदान के हवाले कर दिया जाता है। ... देखना चाहता था कि उसकी इस धारणा में कितना दम है।"

"ऐसा नहीं है सर। ... हमारी संपादकीय नीति में पहले रचनाएं आती हैं, बाद में नाम।"

"तो फिर अगले अंक में इसे ले लीजिए। कहानी तो पसंद आ ही गई है आपको। कथाकार मनीष कुमार की फोटो और परिचय भिजवा दे रहा हूं।"

"जी सर !... ठीक है !"

इस बीच पत्रिका के कई अंक निकल चुके। कथाकार मनीष कुमार अभी भी कहानी प्रकाशित होने की प्रतीक्षा कर रहा है।

–अपर बेनियासोल , पो. आद्रा , जि. पुरुलिया,
पश्चिम बंगाल, मो. 9800940477

लघुकथा

प्रतिकार

रश्मि 'लहर'

"क्या यार, हर समय टेंशन उगल कर रख देती हो अपनी रचनाओं में ! अरे कभी प्यार-व्यार, किस-विस भी लिखो न। बिना मसाले हिट नहीं हो पाओगी, जान लो। कौन पढ़ेगा बर्तन धोने वालों का/घोड़े की नाल ठोकने वालों का दर्द ? हद होती है.."

अपनी पत्नी स्मृति की उत्कृष्ट लेखनी से सजी पुस्तक के बंडल पर उपेक्षित सी नज़र डालते हुए, वाणी से लगभग धिक्कारते हुए, रमी अपने जूते से गेंद को हल्के से उछालता हुआ ड्राइंगरूम तक पहुँचते ही ठिठक गया।

कमरे में लगे टीवी पर स्मृति की फोटो उसकी पुस्तक के साथ, एक चैनल पर सजी थी। उसके नीचे लिखे कमेंट को पढ़कर रमी का सर्वांग झन्ना उठा था। वहाँ बड़े-बड़े शब्दों में लिखा था -

"अश्लीलता तथा भौंडी रचनाओं पर भारी पड़ा यथार्थवादी लेखन। सर्वोच्च साहित्यिक पुरस्कार हेतु चयनित की गई 'स्मृति' की पुस्तक 'एक ना ऐसे भी' !" **–लखनऊ, मो. 7084952803**

लघुकथा का स्वरूप : दोहे

गीता चौबे गूँज

क्षणिक मात्र की लघुकथा, जिसका पैना तीर।
गागर में सागर भरे, खींचे बड़ी लकीर ॥
कथ्य भी रहे जरूरी।
कथा भी होनी पूरी ॥

लघुता जिसका मूल हो, अरु सार्थक संदेश।
शिल्प-कथ्य से हो सजी, कहा-अनकहा शेष।
पंच जिसका मारक हो।
नियम का भी वाहक हो ॥

जहाँ खत्म हो लघुकथा, शुरू वहाँ से अन्य।
पंच पंक्ति के साथ ही, रहे विसंगतिजन्य ॥
शब्द जितना कम-से-कम।
कथा में भी तो हो दम ॥

शीर्षक भी उपयुक्त हो, हो न काल का दोष।
मानक पर उतरे खरी, करे न कोई रोष ॥
तभी तो बात बनेगी।
चुस्त लघुकथा रहेगी ॥

शब्दों में कंजूस हो, करे खर्च अति अल्प।
उत्तम हो वह लघुकथा, नहीं बात यह गल्प ॥
विधा यह अति संबल है।
राह इसकी उज्ज्वल है ॥

लघुकथा

चरणस्पर्श

नेहा नरूका

एक मामूली से शहर की एक मामूली-सी कॉलोनी में एक पक्का मकान बना है। मकान के गेट पर यानि गली में ही दो भैंसें बंधी हैं। गली में गोबर की बास फैली है। कोने की तरफ़ वाले मकान के गेट पर खड़े दो लड़के अपने हाथ नाक पर रखे हैं। लगता है ऐसा करने से गोबर की बास उनकी नाक में घुसने से रुक जाएगी। सामने छज्जे पर लटकी लड़की गली में झांक कर मुस्करा रही है। उसके कान में ईयरफोन लगा है। सुबह के खत्म होने और दोपहर के शुरू होने का वक़्त है। धूप चुभने की तैयारी कर रही है और हवा शांत होकर बैठने की।

मकान के भीतर आंगन में पसीने से लथपथ एक जवान औरत चूल्हे पर रोटियाँ सेंक रही है। अभी-अभी उसने एक रोटी बेली है, एक तवे पर डाली है और एक आँच में सेंक रही है। तभी एक आदमी आँगन में घुसता नज़र आता है। औरत आदमी को देखकर सिर पर पल्लू रख लेती है। आदमी ने पटरा वाली निकर पहन रखी है। उसकी सफ़ेद बनियान से जनेऊ भी दिख रहा है और चेहरे पर गुस्सा। उसके गुस्से को देखकर लग रहा है जैसे वह जवान औरत का गोश्त बनाकर खाने वाला हो।

आदमी- चल, बन्द कर रोटी !

औरत- हमें रोटी कर लेंन देओ फिर घाम बढ़ जाएगी।

आदमी- बढ़ जान दे घाम, चल उठ ! !

औरत- हमाए पेट में पीर हो रई है, आज सबेरे सें हीं तबियत ठीक नईं।

आदमी-(चेहरे पर वहशी गुस्सा बढ़ गया है) साली चलती है कि नईं ?

औरत- हमनें कह दओ नईं जाएंगे...

आदमी- क्यूँ नहीँ चलेगी ? साली गरीबिटी ! रोटी, कपड़ा, साबुन-सोडा कौन लाकर देता है तुझे ?

औरत- तूने जाके लाने ही हमाओ आदमी दिल्ली भेज दओ है तांसों रोज-रोज...

आदमी-तेरा खसम ! क्या किया है उस दरुआ ने तेरे लिए। अब तक एक ढेला कमाया है। तुझे और तेरे खसम दोनों को हम पाल रहे हैं। सो जो कहें बाय चुपचाप मान। बस अब उठ ! (हाथ पकड़ लेता है)

औरत- हमाओ महीना आने वालो है। पेट में पीर उठ रई है और बैसेऊ हम तुम्हाई नहीं तुम्हाए मोड़ा की लुगाई है। कछू तो धरम कर लो।

आदमी- जी जीभ कब से कतरनी-सी चलन लगी ? हमाई बिल्ली हम ही सें म्याऊँ।

औरत- (चुपचाप बैठी हुई है जैसे कुछ बोलने की पूर्व की तैयारी कर रही हो)

आदमी- चल तू ऐसा कर ये कपड़े उतार। जब तेरा आदमी कमाकर लाए तो पहन लेना। तब तक नंगी रह। बड़ी आई धरम सिखाने वाली।

औरत- (चुप)

आदमी- (गुस्से से साड़ी का पल्लू खींच देता है) उतार। नहीँ तो यहीं मार के गाड़ दूँगा।

औरत- (रोने लगती है) (फिर और ज़ोर से रोने लगती है) (रोने की आवाज़ बढ़ती जाती है)

औरत- (साड़ी खोलते हुए) हाँ उतार रही हूँ तेरे कपड़े। ले रख अपनी गाड़ में अपने कपड़े। नंगी देखने हैं तो देख अब हमाओ नंगपन। बहुत कर ली तेरी गुलामी ठठरीबंधे ! अब नहीँ करूँगी।

आदमी- (क्रोध से लाल हो गया है)

औरत- (निर्वस्त्र होकर नीली हो चुकी है)

आदमी- (दबोचता है)

औरत- (धक्का देती है और झट से मकान से बाहर गली में आ जाती है)

आदमी- (भीतर खड़ा-खड़ा गालियां बक रहा है) (गालियों की आवाज़ बढ़ती जा रही है) (बढ़ती जा रही है)

स्वर 1- अरे देखो-देखो !

स्वर 2- नंगी औरत ! !

स्वर3- कौन है ?

स्वर4- भैंसियां वाले पंडिजी की बहू लग रही है।

स्वर3-पागल है गई है का ?

स्वर4- खुसबू अपना दुप्पटा दे जल्दी...अरे कोई पकड़ो। अरे पकड़ो।

खुशबू- (जल्दी-जल्दी सीढ़ियां उतर रही है)

स्वर 5- ये बंटी मोबाइल निकाल वीडियो बनाते हैं। मोहल्ले में आज सनी लियोनी आई है।

(तब तक ख़ुशबू भागती हुई दुप्पटा उड़ा देती हैं, औरत जैसे ही दुप्पटा फेंकने को होती है दूसरी औरतें उसे कस के पकड़ लेती हैं)

कई स्वर एक साथ- ऐ बहू जी का कर रहीं हों तुम। ऐसो तो कोई भूत-परीत आवें पें भी न करे। चाहो तो फांसी लगा लो, कुँए में डूब जाओ, जहर खालो, आग में जल जाओ। सबकुछ कर लो पर ये तमासे न करो। अपने जीते-जी अपनी इज्जत न उतरवाओ। जा मोहल्ला की बदनामी कर दई तुमने। मोड़ा कैसे हँस रहे थे...मोड़ी सरम से पानी हो गई...भाभी जी का कर रही हैं...

(तब तक एक साड़ी-ब्लाउज भी आ जाता है)

आदमी-(आँगन में खड़ा बेटे को फ़ोन मिला रहा है) हेलो पंकज।

बेटा- हैलो। हाँ पापा। चरणस्पर्श।

–कोलारस, शिवपुरी, मध्यप्रदेश, मो. 9340022712

लघुकथा

वापसी

शील निगम

"इतनी सुबह फावड़ा ले कर कहाँ चल दिये बीरू भईया ?"

"नदी किनारे नया घर बाँधना है."

"वहाँ कहाँ तुम्हारी ज़मीन है जो घर बाँधोगे ? खेत तो सारे इधर हैं."

"अब हम दोनों बुढ़हा गये हैं न, खेत बिटवा संभालेगा. हम नदी के पास साग-सब्ज़ी बो कर वहाँ पास की गुफ़ा में रह लेंगे."

"अच्छा-ख़ासा घर छोड़ कर गुफ़ा में कौन रहता है ?कौन से ज़माने की बात कर रहे हो भईया ?"

"बिटवा शहर से पढ़ कर आया है न, मशीनी खेती करेगा. हम बूढ़ा-बूढ़ी सब्ज़ियाँ उगा लेंगे. अपने मोबाइल में उसने एक रील दिखाई कि कैसे ईरान देश में लोग किसी पठारी झरने के आस-पास की गुफ़ाओं में, वहीं के पत्थरों को जोड़-जोड़ कर मिट्टी की भरावन से खिड़की-दरवाज़ा बना कर गुफ़ाओं में रहते हैं."

"ओहो, तो यह नया ख़्याल आया है बीरू भईया, तो चलो एक फावड़ा लिये मैं भी चलता हूँ. वैसे भी बहू-बेटे का परिवार बढ़ जाने से घर छोटा पड़ने लगा है."

"अब जब रहने के लिए धरती कम पड़ेगी तो हम सब गुफाओं की तरफ़ ही वापस दौड़ेंगे."

मो. 790015486

लघुकथा

क्या आईडिया दिया है !

पंकज शर्मा

दो दोस्त सैर कर रहे थे। चलते चलते वे दोनों वहाँ से गुज़रे, जहां गाजर घास खड़ी हुई थी।

पहला दोस्त- यार देख कितनी घास उग आई है।

दूसरा दोस्त- हाँ यार, और धीरे धीरे यह बढ़ती हुई पूरा जंगल ही बन जायेगी।

पहला दोस्त- बिलकुल, और यह घास बहुत नुकसान करती है। एक तो यह फैलती और बढ़ती बहुत जल्दी है, और दूसरा फसलों को भी नुक्सान पहुंचाती है।

दूसरा दोस्त- और जो यह रास्ते में उग आती है, और बढ़कर झाड़ियों की शक्ल ले लेती है, उससे तो और भी बड़ा नुकसान है। कई बार पता ही नहीं चलता, कोई भी गाय-भैंस, या जानवर इनमें से एकदम निकलकर आ जाता है। स्कूटर-मोटरसाईकल वाला संभल नहीं पाता और गिर जाता है। कई बार तो गंभीर चोट आ जाती है, और मौत तक हो जाती है। कार हो तो कार का नुक्सान, स्कूटर-मोटरसाईकल का तो होता ही है। फिर जानवर को भी तो चोट लगती है बेचारे को, उसे क्या पता चलता है।

पहला दोस्त- यार मैं तो ख़ुद एक-दो बार बाल-बाल बचा हूँ और वह भी इसलिए कि मैं तेज नहीं चलाता हूँ, वर्ना हो जाता मेरा भी बंटाधार।

दूसरा दोस्त- तो प्रशासन को इस समस्या को दूर करना चाहिए न, कम से कम कटवाना तो चाहिए, उनकी ड्यूटी बनती है।

पहला दोस्त- ठीक कह रहे हो, बनती तो है। पर हर काम प्रशासन ही करे, यह जरूरी तो नहीं। उसकी अपनी सीमितता है, स्टाफ या बजट कम होता है कई बार। ऐसे में हमारा भी तो कुछ फ़र्ज़ बनता है। हम भी तो यह काम कर सकते हैं।

दूसरा दोस्त- हम क्या और कैसे कर सकते हैं भई ?

पहला दोस्त- यार यह काम ही क्या है। अगर श्रमदान कर सको तो ख़ुद ही कर दो मिलजुलकर, या किसी स्वयंसेवी संस्था की मदद ले लो। अपनी कोई संस्था बना लो ऐसे कामों के लिए। और नहीं तो एक-दो मजदूर लाओ दिहाड़ी पर और उन्हें काम पर लगा दो। उनकी भी दिहाड़ी बन जाएगी, अपना भी काम हो जाएगा। और तो और लोग भी आदर-सम्मान की नज़र से देखेंगे।

दूसरा दोस्त- और खर्चा ? वह कौन करेगा ?

पहला दोस्त- यार वह भी मिलजुलकर कर लेंगे। वैसे भी तो हम भंडारे के लिए या पार्टियाँ करने के लिए रुपए-पैसे खर्च करते ही हैं, तो थोड़ा-सा ऐसे कामों के लिए भी निकाल लेंगे। बल्कि मैं तो सोच रहा हूँ कि अब ऐसे ही काम करना शुरू कर दूं। साहिर लुधियानवी का एक शे'र याद करवा दिया तुमने-

'माना कि इस ज़मीं को न गुलज़ार कर सके,

कुछ ख़ार कम तो कर गए, गुज़रे जिधर से हम।'

दूसरा दोस्त- वाह दोस्त वाह ! क्या आईडिया दिया है ! मान गए। चलो करते हैं यह काम। कोई और हो न हो, मैं तुम्हारे साथ हूँ।

और दोनों मुस्कुरा दिए।

अम्बाला, मो. 09416860445

ई-मेल:- sharma.pankaj254@gmail.com

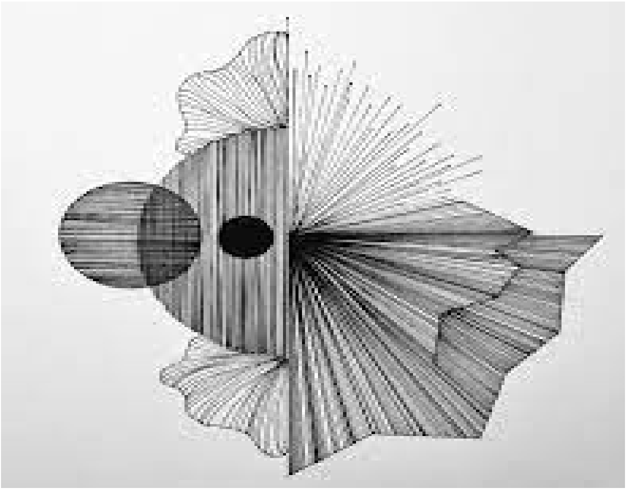

लघुकथा

ब्लैक होल

विजयानन्द विजय

दिनानुदिन तेज होते जा रहे शहरीकरण से पेड़ और जंगल कटते गये। पर्यावरण प्रदूषण और ग्लोबल वार्मिंग के कारण वन्य प्राणियों का अस्तित्व संकट में पड़ गया। जंगल में शेरों की संख्या कम होने लगी। राजा शेर सिंह का अब कोई वारिस नहीं बचा था, जो उनके बाद जंगल पर शासन कर सके। बाघों के साथ भी वही स्थिति थी। वृद्ध राजा को अब चिंता होने लगी कि उनके बाद इस जंगल का क्या होगा। काफी सोच-विचार कर उन्होंने अपने मंत्रियों और सभासदों की एक बैठक बुलाई। राजा ने जानना चाहा कि जंगल में रहने वाले जीवों में से किसे राजा बनाया जाए। लोमड़ी अपनी धूर्त्तता के लिए बदनाम थी, तो भेड़िये अपनी दुष्टता के लिए। हाथी खुद ही सुस्त जीव था, और बंदर उछल-कूद स्वभाव वाला अस्थिर जीव। भालू का तो सवाल ही नहीं था। बचे पक्षी, तो वे हवा में ही रहते थे, वे जमीन का हाल क्या जानते ? इसलिए निर्णय लिया गया कि किसी मजबूत कद - काठी वाले शक्तिशाली, मेहनती और परिश्रमी जीव की तलाश की जाए और उसे राजगद्दी सौंप दी जाए। सभी ने इस पर सहमति जताई।

ऐसे योग्य जानवर की तलाश शुरू हो गई, मगर ऐसा कोई भेजी जंगल में नहीं मिला, जिसमें वे सभी गुण विद्यमान हों। एक दिन सभा में डरते-डरते एक सभासद ने प्रस्ताव दिया - हुजूर क्यों न गधे को यह दायित्व सौंपा जाए ?

- हाँ। ठीक तो है। वह मेहनती है, शक्तिशाली है, परिश्रमी है, धीर-गंभीर जीव है। - कहते हुए राजा शेर सिंह ने कुछ देर सोचा, फिर कहा- मगर जंगल में गधे हैं कहाँ ? सब तो नगरों में काम करने चले गये हैं।

- जी महाराज। तो, अब हम क्या करें ?- सभासदों ने एक स्वर में पूछा।

- नगर में जाकर सबसे समझदार गधे को समझा-बुझाकर जंगल में लाया जाए।

- राजा ने त्वरित आदेश जारी किया।

सभासदों का एक दल नगर में गया। नगर के सबसे हृष्ट-पुष्ट, परिश्रमी और समझदार गधे को समझा-बुझाकर जंगल में लाया गया। शेर सिंह ने उसे देखा, तो उससे बहुत प्रभावित हुए और एक भव्य समारोह में उस गधे को जंगल का राजा बना दिया गया।

जीवन भर सामान ढोने, मजदूरी करने और मूर्ख समझे जाने वाले गधे ने कभी सोचा भी नहीं था कि वह कभी राजा भी बनेगा। मंत्रीगण और सभासद गधे राजा के नाम पर शासन-प्रशासन चलाने लगे। वे जो-जो प्रस्ताव गधे राजा के पास लाते, राजा उस पर अपनी स्वीकृति प्रदान कर देते और ढेंचू-ढेंचू कर खुश होते। उनकी कम बोलने वाली और धीर-गंभीर छवि से प्रजा भी बहुत खुश थी। उनका सम्मान करती थी।

जब कभी गधे राजा अपने रथ में बाहर निकलते, तो प्रजा उन्हें देखने के लिए सड़कों पर उमड़ पड़ती। उन पर फूल बरसाती, उनकी जय-जयकार होती। यह सब देख गधे राजा गद्गद हो जाते।

गधे राजा जब खुश होते, तो ढेंचू - ढेंचू करते, दु:खी होते, तो ढेंचू-ढेंचू करते। मंत्रीगण कोई प्रस्ताव देते, तो ढेंचू-ढेंचू करते। सहमति व्यक्त करते, तब ढेंचू-ढेंचू करते। जब असहमति होती, तब भी ढेंचू-ढेंचू करते। ढेंचू एक तरह से राजकीय आवाज और पहचान बन गया।

जंगल की प्रजा भी गधे राजा की इस शैली से इतनी प्रभावित हुई कि उन्होंने भी हर बात पर ढेंचू-ढेंचू करना सीख लिया। ढेंचू-ढेंचू के उच्चारण से प्रजा को अद्भुत खुशी मिलती और उनके शरीर में उत्साह का संचार हो जाता।

धीरे-धीरे जंगल के सभी प्राणी अपनी बोली, अपनी भाषा, अपनी ज़ुबान भूल गये और ढेंचू - ढेंचू करने लगे। जंगल में बस तब से ढेंचू-ढेंचू का स्वर ही गूँज रहा है...।

बक्सर (बिहार), मो. 09934267166,

ईमेल - vijayanandsingh62@gmail.com

लघुकथा

स्वाभिमान

डॉ. शबनम आलम

हमारी गाड़ी जैसे ही मेडिकल कॉलेज के परिसर में रूकी, सहसा दो छोटे बच्चें मास्क और कलम के पैकेट लिए आए और कहने लगें- "आंटी मास्क ले लीजिए। " मैंने कहा - "बेटा ! हमारे पास मास्क हैं; हमें नहीं चाहिए" । "अच्छा ठीक है, कलम ले लीजिए ! ये मेरी छोटी बहन है। "

"नहीं ! हमें नहीं चाहिए; कहा न। "

मेरी बातों को अनसुना करते हुए वह मेरी बेटी के पास गया और कहने लगा- "अप्पी-अप्पी (दीदी) ! आप लेलो न। "

"कहा न नहीं लेना है, क्यों परेशान कर रहे हो ?" मैंने उसको झिड़की दी।

दरअसल, कलम और मास्क दोनों की क्वालिटी अच्छी नहीं थी। हम मेडिकल के अंदर चले गयें। पहले से अपॉइंटमेंट ले रखा था, इसलिए डॉक्टर से दिखाकर हम जल्दी हीं बाहर आ गयें।

मेडिकल के अंदर से जैसे हीं हम बाहर आएं; एक औरत अपने हाथ में दस, पचास और सौ के कई नोट दबाए, कहने लगी- "साहब ! अल्लाह के नाम पर कुछ दे दो। बच्चें कई दिनों से भूखे हैं, सुबह से कुछ खाए नहीं हैं। "

मेरे हसबैंड ने कहा, " माफ़ करो !" पर वो पीछे पड़ गई। मैंने कहा- "हट्टी-कट्टी हो, कोई काम क्यों नहीं करती ?"

सामने ही वो दोनों बच्चें दिख गयें। हस्बैंड बोलें- "देना ही है तो इन बच्चों को पैसे दे दो; इतनी छोटी सी उम्र में मेहनत कर रहें हैं। " इन्होंने कहा- "सूनों बच्चों ! इधर आओ !" दोनों भागते हुए आए। इन्होंने ₹50 के नोट निकाल कर उसे दिए। और कहा-"कुछ खरीद कर खा लो तुम दोनों। " उसने झट से पांच मास्क निकाला और मुझे देने लगा। मैंने कहा-"मुझे मास्क नहीं चाहिए तो उसने अपनी बहन से कहा- "अप्पी को दस कलम दे दो। " बहन ने भी कलम गिनना शुरू कर दिया !

मैंने कहा-"बेटा ! मुझे न मास्क चाहिए और न हीं कलम। "

वो मेरी बेटी से रिक्वेस्ट करने लगा- "अप्पी ! आप ले लो ! नहीं तो आप अपने पैसे वापस ले लो। "

उसने पैसा निकाला और बेटी के हाथ में पकड़ा दिया। मेरी अम्मी कहती हैं- "किसी से मुफ्त का पैसा नहीं लेना"।

मैंने कहा- "ऐसा समझो कि हमने ले लिया है। " पर वो माना नहीं। मैं उसके 'आत्मस्वाभिमान' को देखकर हैरान थी।

मैंने बेटी से कहा- "तुम कलम ले लो। " तब जाकर उसने पैसा लिया। मैंने उसके सुखे होंठ देखकर कहा-"तुम दोनों कुछ खरीद कर खा लो। "

"नहीं, मैं पैसे अम्मी को दूँगा; अब्बु की तबीयत ठीक नहीं है। अम्मी, दूसरे के घरों में झाड़ू-पोछा का काम करती हैं। मुझे कुछ खाने का मन नहीं करता है। घर पर जो भी रूखा- सूखा मिलता है, हम सब बांट कर खाते हैं। मैं अपने छोटे भाई और इस बहन को पढ़ाता हूँ। आज इसके स्कूल की छुट्टी है, इसलिए मेरे साथ आ गई है। "

मैंने कहा- "क्या तुम्हें पढ़ने का या अन्य बच्चों की तरह शरारतें करने का मन नहीं करता ?"

"पढ़ने का दिल तो बहुत करता है, पर मैं भी पढ़ने लगूँगा तो, ये दो पैसे आते हैं, वो कहां से आएंगे ? मेरी जिंदगी तो खराब हो गई, पर भाई-बहनों का खराब नहीं होने दूँगा। रही बात शरारत करने की; घर पर रहूँगा तब न शरारत करूंगा। मैं तो रोड पर निकल आया हूँ; यहाँ कैसी शरारतें ? यहां तो सिर्फ जिम्मेदारियां याद रहती हैं। मजबूरी सब कुछ सीखा देती है। "

मैं हतप्रभ ! इतना छोटा सा बच्चा, बमुश्किल बारह साल का होगा। मैंने उसको अपना मोबाइल नंबर दिया; कहा- "जब भी कोई जरूरत हो तो इस नंबर पर कॉल करना। "

मैं जानती हूं, वह कॉल नहीं करेगा...'आत्मस्वाभिमान' जो इतना बड़ा है। निस्संदेह एक दिन बड़ा एवं अच्छा आदमी बनेगा। मेरे दिल ने यही कहा -"धन्य हैं, वो माँ-बाप जिनके ये लाल हैं" !

अलीगढ़, मो. 7983406102

ईमेल- shabnamtabssum1980@gmail.com

आलेख

लघुकथा में पात्रों की प्रवेश-प्रक्रिया और रचनात्मकता की निर्मिति से सम्बन्ध

ज्योत्स्ना कपिल

लघुकथा, कथा साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है, जिसका प्रचार-प्रसार इन दिनों बहुत जोर-शोर से हो रहा है। सोशल मीडिया के जरिये लघुकथाकारों की उत्पत्ति बहुतायत में हो रही है। आये दिन नये लघुकथाकार पैदा हो रहे हैं और कुछ समय पूर्व के रचनाकार गायब हो रहे हैं। सबसे पहले सवाल यह उठता है कि लघुकथा क्या है ? कथा साहित्य की सबसे सूक्ष्म रचना, जिसमें कथा तत्व भी विद्यमान हो, लघुकथा की श्रेणी में रखी जाती है। लघुकथा का जन्म विसंगतियों की कोख से ही होता है। यह सामाजिक विद्रूपताओं, कुरीतियों, वर्ग संघर्षों, राजनैतिक परिस्थितियों, उनसे उभरी विषमताओं आदि पर प्रहार करती है। चूँकि लघुकथा समस्या और अनुभूति केन्द्रित विधा है और कथा साहित्य की हर विधा में सामान्यतः कथा पात्रों के माध्यम से ही आगे बढ़ती है। इन सभी विधाओं में कथानक कुछ पात्रों के इर्द-गिर्द ही घूमता है। पाठक उन पात्रों की समस्याओं, दुःख-दर्द, उल्लास व आँसू से प्रभावित होता है। उनके साथ मुस्कुराता है, रोता है। अर्थात पात्रों की सामाजिक, मानसिक, धार्मिक स्थिति, मनोस्थिति के अनुरूप पाठकों की सम्वेदनाएँ भी प्रभावित होती हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि पात्र क्या है ? अक्सर माना जाता है कि मानव या मानव के समान व्यवहार करने वाले तत्व रचना के पात्र होते हैं, परन्तु डॉक्टर उमेश महादोषी कहते हैं कि इस तरह सोचना ठीक नहीं है। उनके अनुसार ''कथा रचनाओं (उपन्यास, कहानी, लघुकथा -सभी) में प्रत्यक्ष एवम् अप्रत्यक्ष रूप से सक्रिय (ऐक्टिव) एवम् क्रियाशील (इन्वॉल्व) प्रत्येक जैविक-अजैविक संरचनात्मक तत्व (ऑब्जेक्ट) जो व्यक्त-अव्यक्त, भावों-विचारों का वाहक बनकर, कथा को बुनने एवम् आगे बढ़ाने का माध्यम बनता है, उस रचना का पात्र होता है। ये संरचनात्मक तत्व कथा रचना में पात्रेतर भूमिका में भी होते हैं।''

अब जबकि पात्र से तात्पर्य स्पष्ट हो गया है तो अगला सवाल उठता है कि लघुकथा का आरम्भ पात्र के प्रवेश और उसके माध्यम से अथवा समस्या या अनुभूति के उभार से करना अधिक उचित होगा ? या फिर पहले पात्र से इतर माध्यम के द्वारा समस्या या अनुभूति के संकेतों को उभारना ठीक होगा ? इसके लिए हमें कुछ लघुकथाओं पर दृष्टि डालनी होगी। उदाहरण के लिए रामेश्वर काम्बोज हिमांशु जी की लघुकथा ऊँचाई में कथा का प्रारंभ देखिए-

पिताजी के अचानक आ धमकने से पत्नी तमतमा उठी, ''लगता है बूढ़े को पैसे की ज़रूरत आ पड़ी है, वरना यहाँ कौन आने वाला था। अपने पेट का गड्ढा भरता नहीं, घरवालों के कुँआ कहाँ से भरोगे ?'' मैं नजरें बचाकर दूसरी ओर देखने लगा।

यहाँ लघुकथा का प्रारंभ पिताजी के अचानक आने से, और पत्नी के बड़बड़ाने से हुआ है। अर्थात कथा की शुरुआत सीधे पात्र के प्रवेश से हुई है। बलराम अग्रवाल जी की 'अकेला कब तक लड़ेगा जटायु ?' की बानगी देखिए-

''लगभग चौथे स्टेशन तक कम्पार्टमेंट से सभी यात्री उतर गये। रह गया मैं और बढ़ती जा रही ठंड के कारण रह-रहक़र सिहरती, सहमी आँखों वाली वह लड़की।''

यहाँ भी रचना का प्रारंभ पात्रों (सूत्रधार व लड़की) के प्रवेश के साथ ही हो गया है। एक और उदाहरण देखिए-

''कौन था ?'' उसने अँगीठी की ओर हाथ फैलाकर तापते हुए पूछा।

''वही सामने वालों के यहाँ से'' पत्नी ने कुढ़कर सुशीला की नकल उतारी, ''बहन रजाई दे दो इनके दोस्त आये हैं।'' फिर रजाई ओढ़ते हुए बड़बड़ाई...।

सुकेश साहनी जी की लघुकथा 'ठंडी रजाई' में भी दृश्य पात्रों (उसने व पत्नी) की उपस्थिति के साथ आरम्भ होता है।

दूसरी ओर अनिल शूर जी की लघुकथा 'स्वाभिमान' में एक विवाह समारोह के वातावरण का विवरण है-

एक विवाह समारोह अपने शबाब पर था। हॉल में लगी टेबल्स पर लोग खाने-पीने में मग्न थे। एक तरफ डीजे की तेज धुन पर कुछ युवा थिरक रहे थे। इन सबसे अलग कुछ बच्चे अपनी ही धुन में मस्ती काट रहे थे। हॉल के एक सिरे से दूसरे तक जाना और फिर वापस दौड़ लगाना ही जैसे उनका शगल था।

एकाएक धड़ाम की आवाज़ हुई, देखा दौड़ते हुए चार पाँच वर्षीय एक बालक पक्के फर्श पर गिर पड़ा था। अविलंब जाकर उसे उठाया। सबके बीच इस तरह गिरने से बच्चा सकपकाया तथा

कुछ अपमानित भी अनुभव कर रहा था। उठाए जाने पर उसने कहा, ''अंकल मुझे चोट बिल्कुल नहीं लगी।'' अपनी टेबल पर लौटते मैंने इतना कहा, ''नहीं लगी है, तो अच्छा है, पर अब जरा ध्यान से खेलो।''

तभी बच्चे की आँखें, सामने टेबल पर मौजूद अपनी माँ से मिलीं। अगले ही पल माँ के पल्लू को थाम, दहाड़ मारकर वह रो पड़ा।

इस लघुकथा में सबसे पहले एक विवाह समारोह के वातावरण का वर्णन किया गया है। लगभग आधी कथा समाप्त हो जाने के पश्चात ही मुख्य पात्र 'बच्चा' आता है और रचना को चरम पर ले जाकर छोड़ देता है।

यहाँ हमने दोनों ही प्रकार की लघुकथाओं को देखा, जिनमें पात्र प्रारंभ से ही है, अथवा उसका प्रवेश आवश्यक विवरण के पश्चात हुआ। अधिकतर कथाओं में पात्र कथानक के आरम्भ से ही आ जाते हैं। परंतु जिनमें बाद में आते हैं, वह भी प्रभावित करने में, पाठक के मन पर अपना प्रभाव छोड़ने में सफ़ल रहे हैं। यह देखने में आया है कि पात्र के प्रवेश से पूर्व परिवेश का वर्णन पात्र के प्रवेश को प्रभावशाली बनाता है। यद्यपि मैं यह मानती हूँ कि किसी रचना में पात्र कितने प्रभावी होंगे, वह रचनाकार की सम्प्रेषण शक्ति पर निर्भर करता है।

अब हम आते हैं इस बात पर, कि सामान्यतः लघुकथा में पात्रों का प्रवेश कराने से पूर्व लेखक को किन-किन बातों पर विचार करना चाहिए ? लघुकथा में पात्रों का प्रवेश रचना की प्रकृति व उनसे जुड़ी स्थिति के अनुरूप ही होता है। रचना की प्रकृति निर्धारित होती है उस मूल तत्व से, जो रचना के सृजन का कारण बनती है। मूल तत्व या तो समस्या होती है या अनुभूति, क्योंकि लघुकथा या तो समस्या केन्द्रित होती है या अनुभूति केन्द्रित। किसी भी लघुकथा में प्रेरणा, दुःख, तकलीफ या खुशी की अनुभूति के कारण उभरे भाव, उनके मूल तत्व होते हैं। दुःख-तकलीफ की अनुभूति रचना की प्रकृति को आक्रोशमय या निराशायुक्त हो सकती है। परिवेश का संगठन आक्रोश या निराशा की गहनता को बढ़ा या घटाकर पात्र के ऊर्जास्तर एवं सक्रियता की सघनता को प्रभावित कर सकता है, जो अंततः लघुकथा के प्रभाव को बढ़ा या घटा सकता है। इसी प्रकार दूसरी अनुभूतियाँ भी पात्र की सक्रियता व लघुकथा के प्रभाव को प्रभावित कर सकती हैं। स्थिति को समझने के लिए- डॉ. कमल चोपड़ा की लघुकथा 'निशानी' में एक माँ अपने मरणासन्न बेटे का विवाह उसकी निशानी पाने के लिए उसकी बीमारी छुपाकर करवा देती है। मृत्यु के कगार पर खड़े बेटे की हालत सुनकर उसकी मौसी आती है और दोनों बहनें बात कर रही हैं। उधर बहू अपनी गर्भावस्था का समाचार देने सास के पास जा रही है तब उसे पता लगता है कि सास ने जानबूझकर उसका जीवन नर्क बना दिया। यह सुनकर बहू क्रोध में लात मारकर दरवाजा खोलती है। यहाँ पात्र के आक्रोश की अभिव्यक्ति को लात मारकर दरवाजा खोलने से व्यक्त किया गया है। यहाँ आक्रोश अचानक पैदा नहीं हुआ है वल्कि आक्रोश और उसकी गहनता एक घटनाक्रम और उसकी प्रकृति का परिणाम है। यदि वह घटनाक्रम और अपनी मौजूदा प्रकृति में नहीं होता तो आक्रोश अपनी मौजूदा गहनता में नहीं होता। इस प्रकार एक गहन आक्रोश से भरे पात्र का प्रवेश होता है। यद्यपि यह स्थिति लघुकथा के मध्य में आयी है तदापि यदि ऐसी स्थिति लघुकथा के आरम्भिक परिवेश की निर्मिति में हो और उससे जुड़े पात्र का प्रवेश बाद में हो तो निश्चित रूप से पात्र का प्रवेश भी प्रभावशाली रूप में होगा और संप्रेषण एवं लघुकथा का प्रभाव भी बढ़ेगा। जैसाकि मधुदीप जी की लघुकथा 'मजहब' में हुआ है।

यहाँ हमें यह भी समझना आवश्यक है कि समस्यायें और अनुभूतियाँ भी अनेक प्रकार की होती हैं और किसी न किसी स्थिति से संबद्ध होती हैं। इनको प्रभावी ढंग से व्यक्त करने में पात्र की अपनी भूमिका होती है एवं उसकी गतिविधि से निर्धारित होती है। इस प्रकार पात्र की गतिविधि अत्यंत महत्वपूर्ण होती है, यहाँ तक कि उसके चरित्र और संस्कारों से भी अधिक। अतः यह आवश्यक है कि पात्र अपनी गतिविधि के अनुरूप ऊर्जा से भरपूर हो। यदि उसके भीतर उतनी ऊर्जा नहीं होगी, तो पात्र की गतिविधि उतनी अच्छी तरह से उभरकर नहीं आयेगी। पात्र की यह ऊर्जा या तो नेपथ्य से मिलती है या उसके परिवेश से। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पात्र की सर्जना करते और लघुकथा में उसे प्रविष्ट कराते हुए लेखक को यह ध्यान रखना है कि पात्र की सम्बंधित स्थिति या/एवं आवश्यकताएँ क्या हैं, पात्र को कितनी ऊर्जा की आवश्यकता है और वह उसे कहाँ से मिलेगी ? कई पात्र ऐसे भी होते हैं, जिनकी गतिविधि से परिवेश का निर्माण होता है। कथा के केन्द्र और कथ्य के सन्दर्भ में उनकी भूमिका नहीं होती।

किसी भी रचना की प्रभावगत व सौंदर्यगत अपनी आवश्यकताएं होती हैं। जैसे यदि हमें किसी सज्जन पात्र का चित्रण करना है तो उसके विपरीत एक दुष्ट पात्र का प्रवेश कराया जाएगा इससे कथा रचना का प्रभाव ज्यादा बढ़ जायेगा व उसका सौंदर्य भी बढ़ जायेगा। यदि हम ऐसा नहीं करते हैं तो बेशक पात्र के सम्वाद कुछ भी डाल दें पर वह प्रभाव नहीं आ पायेगा, जिसकी आवश्यकता होगी। चूँकि हमें रचना को साहित्यिक बनाना है, कलात्मक भी बनाना है और प्रभावी भी बनाना है, तो इन बातों का ध्यान रखना पड़ेगा। हमें पात्र के विषय में भी सोचना पड़ेगा। किसी भी लघुकथा की सर्जना करते हुए हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि उस रचना की सर्जना क्यों की जा रही है ? अथवा क्या

उसके पीछे कोई विशेष उद्देश्य है, जिसके लिए पात्रों का प्रवेश कराना जरूरी लग रहा हो ?

अब प्रश्न उठता है कि यह पात्र आते कैसे हैं ? तो कई बार किसी रचना के प्रारम्भ होने से पूर्व ही पात्र उपस्थित हो सकता है। जैसे डॉ. उमेश महादोषी की एक लघुकथा 'भीख में कलम' है। उसमें एक भिखारी वहाँ से निकलते एक व्यक्ति से रोज भीख माँगता है। यानी हम देखते हैं कि उसमें पात्र तो पहले से विद्यमान है, पर उसका प्रकटीकरण उस क्षण से शुरू होता है जब रचना शुरू होती है। उसकी सारी स्थितियाँ बताती हैं कि उसमें पात्र तो पहले से ही विद्यमान है किन्तु उनकी सक्रियता में नये तथ्य के जुड़ने से कथा को आगे बढ़ाया गया है। कुछ लघुकथाओं में पात्र अपनी सक्रियता के साथ स्वयं प्रकट होते हैं। जैसे ऊषा अग्रवाल 'पारस' जी की लघुकथा 'सड़क' में हुआ है। जहाँ प्रेमिका व प्रेमी पात्र अपने संवादगत सक्रियता से स्वयं प्रकट होते हैं।

अब हम देखते हैं रचना में पात्र प्रवेश की दूसरी स्थिति अर्थात जब पात्र रचना प्रारंभ होने के कुछ समय बाद प्रकट हों। जैसे- सन्ध्या तिवारी जी की लघुकथा 'लेकिन मैं शिव कहाँ...' में हुआ है। इसमें एक नारी के आसपास का वातावरण व परिस्थिति के विवरण के पश्चात मुख्य पात्र आता है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो यहाँ पहले परिवेश आया, उसके पश्चात पात्र आया। इसी प्रकार एक और लघुकथा का उदाहरण लेते हैं। अंतरा करवड़े जी की लघुकथा 'ममता' में बेटी माँ से अपने नवजात शिशु की शिकायत करती है कि वह इतना परेशान करता है कि न तो वह सो पाती है और न आराम कर पाती है। तब माँ कहती है कि जब तक इसे माँ की जरूरत है तब तक वह इस सुख को भोग ले, वरना परदेस गए बेटे कहाँ लौटकर आते हैं। अर्थात वह अपने विदेश गए पुत्र को याद कर रही है। इसमें उसका विदेश गया पुत्र कहानी में कहीं नहीं है, अर्थात रचना में यह पात्र नेपथ्य में है, फिर भी बहुत प्रभावपूर्ण तरीके से उभरकर आता है। कुछ रचनाओं में परिवेश के माध्यम से भी बात की जाती है। इनमें पात्र बहुत क्लिष्ट हो जाते हैं या होते ही नही हैं। जैसे भगीरथ जी की कुछ रचनाओं में हैं। एक आम पाठक यह समझ ही नहीं पाता कि रचना में कोई पात्र था या नहीं।

इन उदाहरणों के अतिरिक्त कभी रचना का पात्र सूत्रधार भी होता है। जैसे कपिल शास्त्री जी की रचना 'जीवनसाथी' में हुआ है। इसमें सूत्रधार कहानी सुनाता चला जाता है। तो हम देखते हैं कि सूत्रधार भी एक पात्र ही होता है। इसमें शिवहरे अंकल हैं, उनकी पत्नी है, आज वो जाने वाले हैं, ये सब सूत्रधार बता रहा है अर्थात सूत्रधार पात्र के माध्यम से कथा के मुख्य पात्र का प्रवेश होता है।

कथा की अपनी स्वभावगत, सम्प्रेषणगत व सौंदर्यगत आवश्यकताएँ होती हैं, जिनका पूर्ण होना अन्य चीजों के साथ इस पर भी निर्भर करता है कि पात्र/पात्रों का प्रवेश किस प्रकार से कराया गया है, या उनके प्रवेश की क्या प्रक्रिया है। दूसरी ओर हमें लघुकथा के लाघव व गठन का भी ध्यान रखना होगा। क्योंकि कई बार अनुभवहीन रचनाकार पात्रों को गलत तरीके से प्रवेश करा देता है। यदि ऐसा किया, तो अपना मन्तव्य व्यक्त करने के लिए उसे अनावश्यक वाक्य या सम्वाद तो डालने पड़ेंगे, इससे उनकी व्याख्या गलत तरीके से होगी तथा रचना अपना प्रभाव पाठक पर छोड़ने में नाकाम रहेगी।

अगला प्रश्न उठता है कि पात्र अपनी भूमिका का निर्वाह कैसे करे ? वातावरण की निर्मिति, कथ्य के प्रकटीकरण, कथ्य को रचनात्मक बनाने, समस्याओं व अनुभूतियों की सघनता बढ़ाने अथवा विमर्श को शामिल करने आदि रूप में।

दूसरे शब्दों में पात्र को किन-किन तरीको से अपनी भूमिका का निर्वाह कर सकता है ? इन सभी प्रश्नों का उत्तर 'जीवनसाथी' नाम की रचना में है। इसमें आवश्यक विवरण भी है, पात्र जो कि सूत्रधार के रूप में मौजूद है, वो विवरण भी दे रहा है और दूसरे पात्र का परिचय भी करवा रहा है। इसी प्रकार डॉ. उमेश महादोषी जी की लघुकथा 'करे तो क्या करे भर्तुआ' है। जिसमें भर्तुआ नामक एक पात्र वातावरण की निर्मिति, कथ्य के प्रकटीकरण, कथ्य को रचनात्मक बनाने, समस्याओं व अनुभूतियों की सघनता बढ़ाने एवं विमर्श को शामिल करने- सभी भूमिकाओं का निर्वाह करता है।

अब अगला सवाल उठता है कि रचना को रचनात्मक बनाने में उसके पात्र/पात्रों की कितनी भूमिका होती है ? जिस प्रकार भर्तुआ एक साथ कई भूमिकाएँ अदा करता है तथा रचना को रचनात्मक बनाता है, ठीक इसी प्रकार 'भीख में कलम' में भिखारियों की समस्याओं पर एक लेखक का ध्यान खींचने की भिखारी पात्र की दृष्टि रचना को रचनात्मक बनाती है। जब वह लेखक से भीख माँगता है और लेखक कहता है कि उसके पास देने के लिए कुछ भी नहीं है। तो भिखारी कहता है कि वह अपनी कलम का प्रयोग भिखारियों की स्थिति दिखाता लेख लिखने में कर सकता है। उसकी यह बात सुनकर लेखक पलभर को आश्चर्य में पड़ जाता है फिर उससे बात करने को उत्सुक हो जाता है। इस प्रकार यहाँ एक भिखारी लेखक को अहसास करा रहा है कि उसके पास देने को बहुत कुछ है। वह चाहे तो कुछ भी कर सकता है। उसकी कलम में वह ताकत है जो समाज में एक बड़ा बदलाव ला सकती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लघुकथा में पात्रों का प्रवेश, उनके प्रवेश की प्रक्रिया और उनकी भूमिका प्रभाव और संप्रेषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण होती है। लघुकथाकार को इस सन्दर्भ में सतर्क रहना आवश्यक है। लघुकथा के अन्य मानकों की तरह पात्रों के प्रवेश की प्रक्रिया पर भी समीक्षकों को नोट लेना चाहिए।

–बरेली, मो. 94122 91372

लघुकथा का फलक लघु नहीं है (संस्मरणात्मक आलेख)

अनिता रश्मि

सबसे आवश्यक, सबसे मारक, सबसे ज्यादा ह्रदय को स्पर्श करनेवाली विधा है लघुकथा। सबसे ज्यादा लिखित और पठित भी। पर सबसे अधिक किन्तु-परन्तु लघुकथा के साथ ही है। सबसे अधिक उपदेश भी इसी विधा के लिए हैं। ऐसे में लेखक, पाठक भ्रमित हो जाते रहे हैं।

अब इस पठनीय, बहुचर्चित विधा को थोड़ी स्वतंत्रता चाहिए, जिससे वह खुलकर साँसें ले सके।

लघुकथा जीवन की तल्ख सच्चाइयों की सघन, तीक्ष्ण, जरूरी अभिव्यक्ति है। एक बेचैन करनेवाली विधा। पाठकों की सोच को प्रभावित और उद्वेलित करनेवाली। लघुता में बड़ी बात कहनेवाली। विस्तृत जीवनानुभवों का सार समाहित कर लघुकथा रचना की तरह नहीं, एक हथियार की तरह इसका उपयोग कर रही है।

कहा भी जाता है, यह वह सुई है, जो तलवार का भी काम कर सकती है। और इसीलिए लेखकों-पाठकों का जुड़ाव, लगाव इससे बढ़ता गया है।

इसे आसान विधा माननेवालों को यह भी समझना होगा, लघुकथा लेखन सबसे कठिन है। नहीं है यह कहानी का संक्षिप्त रूप। बुनावट और बनावट में स्वतंत्रता इसकी खासियत है। अत्यधिक ब्योरों में जाने से इसके लघु कहानी में ढल जाने का खतरा है। विशद वर्णन इसके कलेवर को क्षति पहुँचा सकती है। अतः संक्षिप्त कलेवर में सघन बुनावट से विसंगतियों-विडंबनाओं को प्रस्तुत करने में ही यह अपनी सार्थकता पाती है। अनावश्यक विस्तार, छोटी-छोटी घटनाओं पर विपुल शब्द खर्च करने से बचते रहे हैं पूर्व के सुप्रसिद्ध लघुकथाकार।

आज भी एक श्रेष्ठ लघुकथाकार इसके विशद वर्णन से बचने की कोशिश करता है। यह विधा आण्विक कलेवर में मन को उद्वेलित कर सुधार की गुंजाइश भी थमाती है। एक सफल लघुकथा जहाँ खत्म होती है, वहीं से पाठक का चिंतन प्रारंभ होता है। यही लघुकथा की कामना भी है.... पाठकों को चिंतन के सूत्र थमाना। अतः टू दी प्वाइंट बात करने की तरह संक्षिप्त, सारगर्भित लेखन जरूरी। कतिपय सावधानियाँ अपेक्षित।

यह क्षणांश में सब कुछ कह देने की कोशिश है। एक ईमानदार कोशिश।

यह नई विधा नहीं है। सतर-अस्सी के लघुकथा आंदोलन ने बहुतों को उद्वेलित किया था। लगातार शोध कार्य चलने लगे थे। लघुकथा केंद्रित लघु पत्रिकाओं की बाढ़-सी आ गई थी। सारिका, नवतारा, तारिका (अब शुभ तारिका) लघु आघात सहित अनेक पत्रिकाएँ प्रमुखता से लघुकथाएँ प्रकाशित कर रही थीं।

अनेक समाचार पत्र भी लघुकथाओं को स्थान देने लगे थे। खूब धूम रही उन दिनों इसकी। बड़े आलोचक, लेखक अपने लघुकथा विषयक आलेखों से पत्र-पत्रिकाओं को समृद्ध करने लगे थे। पुरस्कार, सम्मान से लघुकथाकारों को नवाजा जा रहा था।

आज के लगभग सारे बड़े, मूर्धन्य लघुकथाकार उस दशक में लिखना प्रारंभ कर चुके थे। लघुकथा और लघुकथाकार की पहचान बनने लगी थी। सबका उत्साह चरम पर था। काफी प्रतिष्ठा बटोरी थी इसने।

मूल्यों के क्षरण पर लघुकथाकारों की एक पूरी जमात 70-80 के दशक में निरंतर तीखा, सार्थक लेखन कर रही थी। लघुकथा में सक्रिय कई रचनाकारों ने अपनी सहज अभिव्यक्ति, सतत क्रियाशीलता, प्रतिबद्धता से लघुकथा की विलक्षणता को आत्मसात भी किया था, पाठकों के दिलों में इस विधा के प्रति अस्सीम प्यार भी जगाया था।

वैसे तो नीति या बोधकथा और दृष्टांत के रूप में लघुकथाओं का सृजन शताब्दियों से जारी है। पहले से ही खलील जिब्रान की लघुकथाओं को खूब सम्मान प्राप्त।

परन्तु इसे विशिष्ट विधा की प्रतिष्ठित उपाधि हाल में पुनः मिली। नए आकाश को छूते हुए इस विधा ने लंबी यात्रा की है। पुरोधाओं जैसे - माधवराव सप्रे, माखनलाल चतुर्वेदी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, विभूति मिश्र, अज्ञेय, विष्णु प्रभाकर, चित्रा मुदगल, कमलेश्वर, रमेश बत्तरा, जगदीश कश्यप जैसे कई सम्मानित नाम इससे जुड़े हैं।

विवाद भी चरम पर। उस समय भी सबसे अधिक विवाद इसी के हिस्से में आया। उस वक्त कोई नामकरण करता था - लघु कहानी, कोई लघु व्यंग्य, कोई लघु व्यंग्य कथा, छोटी कहानी।

अनगिन नामों के पक्षधर जोरदार बहस-मुबाहिसों से इस विधा को परिभाषित करने की कोशिश करते रहे। इसमें सबसे अधिक हानि किसी की हुई, तो वह हुई लघुकथा विधा की ही। हालाँकि इसकी सफलता पर संदेह नहीं था, लेकिन बेमजा बहसों ने माहौल को इसके विरोध में ला खड़ा किया था। अनेक बड़े रचनाकार तीर-कमान लेकर इस विधा के पीछे हाथ धोकर पीछे पड़ गए थे।

बीच में लेखकों ने इस विधा से दूरी बनानी शुरू कर दी थी। बहुत वाद-विवाद, प्रतिवाद ने मोहभंग सा कर डाला था और जो संपादक अपनी लघु पत्रिकाओं में लघुकथा की जड़ों को गहरे तक समोए बैठे थे, वे भी विमुख होने लगे थे।

सारिका जैसी लघुकथा की सबसे बड़ी पैरोकार पत्रिका ने इसके नामकरण के विवाद को गंभीरता से झेला था।

लघुकथा बीच के सालों में फिलर की तरह उपयोग की जाने लगी थी। पत्र-पत्रिकाओं में स्थान तो मिलता था, लेकिन जैसे लघुकथा पर एहसान किया जा रहा हो। बस, कहानी, कविता, व्यंग्य, आलेख के बीच की बची हुई खाली जगह भरने के लिए। बड़ी चोट खाई इसने।

बड़े लेखकों की कलम तो इस दिशा में चुप हुई ही, शिक्षार्थी भी दूरी बनाने लगे थे। हाँ, पाठक विमुख नहीं हुए थे कभी। ऐसे में एक प्रसंग याद आता है। 1978 से प्रकाशित ' नवतारा' हजारीबाग, झारखण्ड (तब बिहार) से छपनेवाली बेहद सम्मानित पत्रिका थी। और लघुकथा को सत्तर-अस्सी के दशक में पहचान दिलाने के लिए प्रतिबद्ध, निरंतर आंदोलनरत श्री भारत यायावर इसके संपादक थे। आज के अनेक प्रसिद्ध साहित्यकारों को प्रथम प्रकाशन का सुख नवतारा से ही मिला था।

बाद में वे बहु प्रशंसित चार सौ पृष्ठ की पत्रिका विपक्ष निकालने लगे थे। मुझसे ही एक बार उन्होंने कहा था,

"लघुकथा ? विपक्ष के लिए लघुकथा नहीं भेजना। "

वे अपनी पहली पत्रिका में प्रमुखता से लघुकथाएँ, उस पर लंबे आलेख, विचार, प्रतिक्रियाएँ, लघुकथा पत्रिकाओं की लंबी लिस्ट छापते रहे थे। नवतारा का 'लघुकथांक' भी प्रकाशित होकर बेहद चर्चित हो चुका था। (पुस्तक रूप में भी आनेवाला था) आज के तमाम बड़े साहित्यकार, लघुकथाकारों की रचनाएँ, लेख और उक्त 'लघुकथांक' पर महत्वपूर्ण प्रतिक्रिया भी आ चुकी थी। उस पर आई प्रतिक्रियाओं को शामिल कर भारत भाई ने नवतारा का लघुकथा प्रतिक्रिया विशेषांक भी प्रकाशित किया था।

फिर उन्होंने मना क्यों किया ? मेरी लघुकथा 'आज की दुनिया' को भी 'नवतारा के लघुकथांक' में प्रकाशित कर चुके थे, फिर उन्होंने ऐसा क्यों कहा ?

मैं असमंजस से घिर गई। आखिर कौन सा तल्ख़ अनुभव उनसे कहलवा रहा है कि लघुकथा ? विपक्ष के लिए लघुकथा नहीं भेजना।

मैंने तो लघुकथा भेजने की ही तैयारी कर ली थी। इसके चमकते समय को कैसे अचानक ग्रहण लग गया ?

पर लघुकथा की मौत नहीं हुई। फिनिक्स की तरह वह फिर उठ खड़ी हुई...पूरे दम-खम के साथ। प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं ने बाइज्जत स्थान देना शुरू कर दिया। दै. हिंदुस्तान, जनसत्ता सबरंग, राष्ट्रीय सहारा, आज, प्रभात खबर, राँची एक्सप्रेस आदि अनेक संस्थाओं ने उन दिनों जैसे ब्रीड़ा उठा लिया था इसे पुनः स्थापित करने का। क्या बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।

आज यह विधा खिलखिलाती हुई सीना तान कर उठ खड़ी है अपने उसी नाम को धारण किए हुए। समर्थ लघुकथाकारों की एक फौज-सी सामने है। उन्होंने अनहोनी को होनी में परिवर्तित कर रास्ता दिखाया है। उससे आगे जाकर वे निरंतर नए अनुभवों के साथ नई सौंदर्यदृष्टि और नई पाठकीयता को गढ़ रहे हैं। पहचान को तरसती, लड़ती-झगड़ती लघुकथा को आखिर अलग पहचान, उचित सम्मान व स्थान आज मिल ही गया।

देश-विदेश की अनगिन लघुकथा केंद्रित प्रतिबद्ध पत्र-पत्रिकाओं, वेबसाइटों, ई पत्रिकाओं की प्रचुरता इस विधा को आगे ले जाने के लिए कटिबद्ध !

इसमें निरंतर लगे रहनेवाले लघुकथाकारों, लघुकथाप्रेमियों का बहुत बड़ा योगदान है। तपस्वी की तरह वे लगे रहे। लगे ही रहे। अंततः लघुकथा को उसका सम्मान दिला कर ही मानें। उनके सहयोग के बिना मृतप्राय विधा को जीवित करना आसान नहीं था।

आज लघुकथा पुनः एक चमकती-दमकती विधा के रूप में अपनी चमक से फलक पर चकाचौंध पैदा कर रही है। अब आजकल इसमें सकारात्मकता का तड़का इसको और भी गुणवत्तायुक्त बना रहा है। तल्ख सच्चाइयों के साथ उपाय भी परोसकर अपनी सार्थकता सिद्ध कर रही है यह।

अब केवल समस्या की ओर इंगित उँगली नहीं, समाधान को उठे कदम भी इसके साथ हैं।

निःसंदेह अगला दौर लघुकथा का है। यह विधा झंडा गाड़कर रहेगी, ऐसा विश्वास निराधार नहीं। तो इसे उन्मुक्त उड़ान के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। हाँ, नजर रखना भी आवश्यक।

–राँची, झारखण्ड, मो. 9431701893

ईमेल - rashmianita25@gmail.com

लघुकथा

दास्तान -ए-भूख

दिलीप कुमार

अक्टूबर का महीना, खेतों में धान की खड़ी फसल मंगरे को दिलासा देती थी, बस चंद दिनों की बात है, फसल कट जाए तो न सिर्फ घर में एक छमाही के लिये रसद का जुगाड़ हो जाये बल्कि कुछ पुरानेकर्ज चुकता हो जाएं तो नए कर्ज पाने की कोई उम्मीद बन सके।

मंगरु की फांकाकशी वाली गृहस्थी उधार, मांगे -तांगे और दुआओं के भरोसे चल रही थी। मंगरु बीमार, कमजोर, बेकार और लाचार था लेकिन फिर भी निवाले उसे ही जुटाने थे, क्योंकि अपनी सयानी होती बेटियों को अपनी डेढ़ बीघे की खेती और पांच बकरियों को इर्द-गिर्द ही रहने देता था, क्योंकि गरीब की फ़सल और गरीब की बेटी पर बहुतों की गिद्धदृष्टि लगी रहती है।

जीवन में आमदनी और कर्जों के भुगतान की उधेड़बुन में वो धान की पकी फसल को निहारकर घर लौटा।

हल्की बूंदा-बांदी से शुरू हुई बारिश की लगातार चार दिनों तक झड़ी नहीं रुकी। पहाड़ों पर हुई बारिश जब उतर कर नीचे आई तो तराई की नदियों और पहाड़ी नालों ने ऐसा उफान मारा कि रातोरात गांव के गांव और शहर के शहर डूब गए। बाढ़ का पानी इतना अप्रत्याशित तरीके से आया कि लोगों ने बमुश्किल अपनी जान बचाई। कोई कहीं नहीं भाग सका, क्योंकि चारों तरफ पानी ही पानी था। गांवों में भी लोगों ने दूसरी मंजिल पर जाकर पनाह ली या स्कूलों वगैरह की छत पर पनाह ली लेकिन जान बचाने के ये अवसर इंसानों को ही मिल सके, जानवरों को पनाह न मिल सकी जिससे मंगरु की सारी बकरियां इस दैवीय आपदा की भेंट चढ़ गयीं।

बाढ़ तो एक हफ्ते बाद उतर गयी लेकिन अपने पीछे भयंकर बर्बादी छोड़ गयी। खेत में खड़ी फसल बर्बाद तो हुई घर में भी रखा अनाज सड़-गल गया। सरकारी गोदामों-दुकानों में भी रखा अनाज सड़-गल गया था।

हर तरफ भुखमरी का तांडव था और भूख हाहाकार कर रही थी। छह बेटियों का बाप मंगरु भी इस कठिन विपदा से भयाक्रांत था। तभी पता लगा कि सरकार ने ट्रक में भरकर अनाज भेजा है और हर परिवार को आटे की एक बोरी दी जानी है।

आटा बंटने को आया, बीमार-लाचार मंगरु को भी आटे की बोरी की जरूरत थी। वो किसी तरह गांव से दो मील दूर अपनी पत्नी कर्मावती के साथ पहुंचा।

आटे के ट्रक के पास लगी बेतहाशा भीड़ को देखकर कर्मावती ने कहा –"तुम इस भीड़ में गिर -पड़ जाओगे तो चोट लग जायेगी। यहीं रुको एक तरफ, मैं आटे की बोरी ले लूंगी और ले भी आऊंगी"।

मंगरु ने सोचा इस भीड़ और भगदड़ में जनाना का जाना ठीक नहीं। लोग भूख से वैसे ही वहशियाना हरकतें कर रहे हैं, कर्मावती को भेजना ठीक नहीं। वैसे भी मरद के रहते औरत का भीड़ में धक्के खाना उसकी मर्दाना गैरत के खिलाफ था।

उसने कर्मावती की बात को मानने से इंकार कर दिया और अंत में कर्मावती को इस बात के लिये राजी भी कर लिया कि भीड़ में घुस कर आटे की बोरी वही लेगा।

पति के आत्मसम्मान का लिहाज करके कर्मावती ने सहमति दे दी।

मंगरु ने कहा -"मैं आटा ले लूंगा लेकिन लेकर चल नहीं पाऊंगा शायद। तू यहीं खड़ी रह भीड़ से हटकर। जब भीड़ छंट जाए तब आना, दोनों मिलकर कोई जुगाड़ करेंगे बोरी को घर ले जाने का"।

पति की हालत से आशंकित मगर असमंजस में कर्मावती ने सहमति में सिर हिलाया।

आटे की बोरियां कम थीं, और जरूरतमंदो की तादाद काफी ज्यादा सो थोड़ी देर तक आटा बंटा। तमाम मशक्कत के बाद मंगरु को एक आटे बोरी मिल गयी। आटा मिलते ही उसकी आँखों में उम्मीद की चमक लौट आयी। वो बोरी को पकड़कर एक किनारे खड़े होकर सुस्ताने लगा कि भीड़ छंट जाए तो या तो वो कर्मावती को आवाज दे या फिर कर्मावती उसे देख ले और उसके पास चली आये। भीड़ बढ़ती गयी, आटे की बोरियां घटती गयीं और अंत मे जब लोगों को लगा कि उन्हें आटे की बोरी नहीं मिलेगी तो लूट मच गयी। लूट के बाद भगदड़ मच गई। ये सब इतनी तेजी से हुआ कि किसी को कुछ समझने का मौका ही नहीं मिला। थोड़ी देर बाद जब भूख के दावानल का आतिशी नाच समाप्त हुआ तब कर्मावती ने मंगरु को खोजना शुरू किया।

मंगरु मिला तो खून खच्चर था। वो पेट के बल लेटा था। उसने पेट के नीचे आटे की बोरी को छिपा रखा था और सैंकड़ों पैर उसके ऊपर से गुज़र चुके थे। कर्मावती ने उसे पलटा तो देखा कि उसके प्राण पखेरू उड़ चुके थे। हालांकि आटे की बोरी सलामत थी, मंगरु भूख और दर्द की फानी दुनिया से जा चुका था। उसने चंद रोज के लिये भूख से लड़ने का उपाय तो कर लिया था मगर अपने पीछे भूख से जुड़ी लम्बी दास्तानें भी छोड़ गया था। **–बलरामपुर, मो. 9956919354**

लघुकथा

अपना-अपना क्लास

सारिका भूषण

पूरे अपार्टमेंट में मातम सा माहौल था। आख़िरकार खन्ना जी कैंसर की लड़ाई से हार गये थे। उम्र भी ज़्यादा नहीं थी, पचास साल भी पूरे नहीं हुए थे। उनके फ्लैट से सुबह से ही रोने की आवाज़ आ रही थी। उनका इकलौता बेटा किशोर बुत बना कोने में खड़ा था। इंजिनियरिंग कॉलेज में अभी-अभी तो दाख़िला हुआ था। उसे अपनी पढ़ाई पूरी करने की भी चिंता हो रही थी। माँ को फ़ैमिली पेंशन मिलेगी, यही उसके लिए राहत की बात थी। इस भयानक बीमारी ने तो खन्ना जी की सारी जमा पूँजी को लगभग खा ही लिया था।

सारे क्रियाकर्म पूरी करके घर लौटते शाम के चार बज गये थे। नहाने-धोने के बाद सारे रिश्तेदारों के चेहरे शांत और फ्रेश दिख रहे थे और सभी अपनी-अपनी मोबाइल में व्यस्त थे।

"अब फाइनल हो गया। आर्य समाज रीति से तीन दिनों का ही काम होगा।"

"जी भाईसाब, अब किसे बारह दिनों की छुट्टी मिलती है और फिर मुझसे तो दो बार आना-जाना नहीं हो पाएगा। घुटने और कमर दर्द से तो चला नहीं जाता।"

"अब होनी को कौन टाल सकता है। बड़े तकलीफ़ में थे देवर जी। ईश्वर दुश्मन को भी यह बोन कैंसर जैसी बीमारी नहीं दें।"

"अरे राजन ! परसों शाम की फ्लाइट की टिकट जल्दी से बुक कर लो नहीं तो दाम बढ़ जाएँगे।"

किशोर एक कोने में बैठा अपने ताऊ, ताई, बुआ और बाक़ी रिश्तेदारों की बातें सुन रहा था, जिन्हें अब सिर्फ़ अपने वापस लौटने की हड़बड़ी थी। ऐसा लग रहा था मानो पिता की चिता के साथ इनकी संवेदनाएँ भी जल गईं थीं।

किशोर की अभी पूरी पढ़ाई बची थी और उसके पिता से आठ साल छोटी माँ के सामने पहाड़ सी ज़िंदगी। मगर किसी को भी इस बात की फिक्र नहीं थी। शायद सभी डर रहे थे कि कहीं यह ज़िम्मेदारी उनके सर न आ जायें। किशोर को अपनी माँ की बहुत चिंता हो रही थी, जिसकी दुनिया पिछले कुछ वर्षों से सिर्फ पति के इर्द-गिर्द ही रही थी।

अचानक किशोर को बाहर बालकनी की तरफ़ से सिसकियों की आवाज़ सुनाई दी। वह उस ओर गया। लगभग चौबीस वर्ष का नंदन अपने घुटनों में चेहरा छिपा कर रोता चला जा रहा था। वही अनाथ और बेघर हुआ नंदन जिसे किशोर के पिता एक दिन गाँव से लौटते वक्त अपने साथ घर लेकर आ गये थे। नंदन ने उनकी खूब सेवा की थी।

किशोर ने जैसे ही नंदन के कंधे पर हाथ रखा, वह पैरों पर गिरकर रो पड़ा " भैया जी, मुझे अब फिर से बेघर नहीं कीजिएगा। मेरी पगार आधी कर दीजियेगा पर इस घर से दूर नहीं कीजिएगा। आपलोग ही मेरे सबकुछ हैं। मैं ज़िंदगी भर आपके और माँजी के साथ रहूँगा।

किशोर का तन-मन नंदन की निश्छल आँसुओं से भींगता गया जहाँ कोई बनावटीपन न था। वह समझ नहीं पा रहा था कि इस दुख की घड़ी में कौन अपना है और कौन पराया। एक ओर खून के रिश्तों वाले वे रिश्तेदार थे जो वापस लौटने के लिए फ्लाइट और ट्रेन की टिकट बुक करने के लिए बुरी तरह परेशान थे और जिन्हें आये अभी चौबीस घंटे भी न हुए थे। दूसरी ओर यह नंदन जो हर सुख-दुःख में साथ रहने के लिये मिन्नतें कर रहा था।

अचानक किशोर को ताई की सुबह वाली बात याद आ गई- "अरे जरा इस नंदन को तो देखो, कितना ड्रामा कर रहा है। इन लोगों का क्लास ही ऐसा होता है, इनके लिए कितना भी कर लो पर इन्हें अपनों जैसी फिलिंग्स हो ही नहीं सकती।"

–राँची, झारखंड, मो. 9334717449

लघुकथा

माँ की सज़ा

एकता अमित व्यास

अब समीर के पास ढेरों ऐसे ज़रूरी काम थे जो ज़रा भी ज़रूरी नहीं थे।

पढ़ाई के अलावा बहुत सारी ग़ैर ज़रूरी बातें समीर के लिए बेहद ज़रूरी हो गई थीं। घर से बाहर जाने की उसे इतनी जल्दी रहती कि घर का काम करना तो दूर उसे काम को सुनने का भी वक़्त नही था। कुछ कहने पर वह अनसुना कर बाहर निकल जाता।

यदि घर का कोई काम करने को तैयार हो भी जाए, तो कोई गारंटी नहीं कि उसे वह पूरा करके ही लौटेगा। लौटने पर एक ही जुमला ''सॉरी भूल गया!'' न सोने का वक़्त न जागने का समय, घर-परिवार के प्रति कोई ज़िम्मेदारी महसूस ही नहीं होती समीर को।

समीर की माँ प्रमिला का बहुत मन करता था कि वह पास बैठे, कुछ उनकी सुने, कुछ अपनी सुनाए और माँ होने के नाते उनसे सलाह-मशवरा भी करे। पर वही 'ढाक के तीन पात'! इसलिए अब प्रमिला बेहद अकेला महसूस करने लगी थी।

आज भी समीर देर रात घर वापस आया और सीधा अपने कमरे में चला गया। दरवाज़ा उसने इतनी ज़ोर से बंद किया जैसे प्रमिला के लिए अपने दिल का रास्ता बंद किया हो।

आधी रात का वक़्त है, माँ की डायरी हाथ लग गई है, वही पढ़ रही है प्रमिला। लिखा है-

"बिटिया, आज फिर तुम देर से लौटी। तुम जानती हो मुझे नींद नहीं आती, जब तक तुम लौट न आओ। तुम आई और सीधे अपने कमरे में चली गई। दरवाज़ा धड़ाम से बंद कर लिया। लगा जैसे मेरे मुँह पर ही दे मारा हो दरवाज़ा तुमने। तुम्हारे इस व्यवहार ने मुझे तोड़कर रख दिया, बेहद पीड़ा हुई, अपमानित महसूस किया।"

शब्द अस्पष्ट से थे। शायद उन पर गिरे आँसुओं से धुलकर कागज़ में समा गए होंगे।

उन्ही धुँधले अक्षरों पर आज मेरी ताज़ी गरम बूँदें गिरकर जैसे माफ़ी माँग रहीं थीं; पर आज क्षमा करता कौन? मुझे उस वक़्त अम्मा के साथ अपने किए की सज़ा आज मेरा बेटा मुझे दे रहा था। **–गाँधीधाम (गुजरात), मो. 98252 05804**

लघुकथा

श्रेष्ठता की माप

ओमप्रकाश क्षत्रिय 'प्रकाश'

संपादक ने फोन करके कहा, "मित्रवर ! आपकी यह रचना बहुत बढ़िया है। यदि आपने यह रचना 'फलां' प्रतियोगिता में भेजी होती तो यह प्रथम आतीं। " यह सुनकर लेखक ने पूछा, "वह क्यों मित्रवर ?"

"क्योंकि उस प्रतियोगिता का निर्णायक मैं हीं था। उसमें 'इस' रचना से बढ़िया कोई रचना नहीं आई थी, इसलिए कह रहा हूं। "

इस पर मित्रवर लेखक ने कहा, "मगर मैंने तो उस प्रतियोगिता में 'यह' रचना भेजी थी। " वह चौंकते हुए बोला तो मित्रवर संपादक ने कहा, "यह संभव नहीं है। यदि आपने आयोजक को रचना भेजी होती तो मेरे पास निर्णय के लिए अवश्य आती। "

इस पर मित्रवर लेखक ने जवाब दिया, "आदरणीय संपादक जी, मैं वह मेल आपको फॉरवर्ड करके भेज देता हूं जो मैंने आयोजक को भेजा था। " जैसे ही मित्रवर लेखक ने यह कहा तो संपादक जी 'निर्णय फिक्सिंग के अनकहे' के बारे में सोचकर चुप रह गए। केवल मुंह से 'जी' ही निकल पाया और फोन कट गया। **–रतनगढ़, जिला-नीमच (मध्यप्रदेश) मो. 8827985775**

लघुकथा

दो स्तन, एक योनि

उज्ज्वला तुपसुंदरे

तारा अपने हाथ में रखे चार लाख रुपए के चेक को घूर कर देख रही थी, जिसे अभी-अभी उसके इलाके के एमएलए और कलेक्टर ने उसके घर आकर सुपुर्द कर नए सिरे जीवन जीने का आवाहन किया था।

"बेटा, जो कुछ हुआ वह बदला तो नहीं जा सकता लेकिन तुम सब कुछ भुलाकर अपनी जिंदगी को संवार सकती हो।" इस पर तारा ने सिर्फ सर हिला कर हामी भर दी।

सबी लोगों के चले जाने के बाद बाप ने तारा के सिर पर हाथ रख प्यार से देखा. आँखों में आँसू थे। गला रूंध गया था। वह बिना कुछ कहे घर के आंगन में चले गए, माँ ने तारा को बाहों में भर कहा-"बेटा हम तेरे साथ हैं, तू हौसला मत टूटने देना। किस्मत में जो लिखा हैं हम मिल कर सामना करेंगे, जो कुछ भी हुआ उसे भूल जा। अभी हम दोनों काम पर निकलते जाते हैं तू अपना ध्यान रख"।

तारा ने निर्विकार चेहरे से मां की ओर देखा और सिर नीचे कर लिया।

आजकल तारा अधिकतर रूप से खामोश ही रहती थी लेकिन उसके भीतर तूफान मचा रहता। उस हादसे को लगभग छह महीने होने को आए थे, बस्ती के लोग, उसके रिश्तेदार कहते हैं- "लड़की बर्बाद हो गई, न जाने इसके नसीब में क्या लिखा हैं"।

अब उसी बर्बाद लड़की के हाथ में चार लाख का चेक था जो एक नीची जाति के खेत मजदूर परिवार के लिए बहुत बड़ी बात थी क्योंकि एक साथ चार लाख रुपए आ जाना किसी लॉटरी से कम नहीं था लेकिन इस रुपयों की वजह से कोई भी खुश नहीं था।

तारा जैसे-जैसे बड़ी हो रही थी वैसे-वैसे उसका यौवन खिलता जा रहा था। उसकी माँ ने उसे उछल कूद करने से मना किया। दोस्त-सहेलियों के साथ रहने से मना कर अपने साथ काम पर लेके जाने लगी ताकि उसकी जवान बच्ची उसके साथ रह सकें और दुनिया की बुरी नजर से बचाया जा सकें। काम करते-करते तारा से माँ कहती- "देख तारा, तू बहुत सुंदर हैं, तुझे कोई भी बरगला सकता हैं इसलिए किसी के तारीफ करने से फूल मत जाना। आंगन में बेरी का पेड़ हैं तो आने-जाने वाले पत्थर मारेंगे ही, ध्यान मत दिया करो"।

तारा चुपचाप सुनती, उसे याद आता वह जब अकेली गांव की गलियों से गुजरती तब लफंगे लड़के कहते- "हाय रे बाबा... क्या कंचा माल हैं.. ? कभी तो एक नजर देख लें.. ? ये जालिम कितने आशिकों का दिल जला रही हैं.. ? बस एक बार हाँ बोल दे, धरती पर ही स्वर्ग मिल जाएगा...। "

यह सब सुन तारा मन ही मन में खुश जरुर होती लेकिन यह बात माँ के समझ में आ जाती- कहीं बेटी के कदम गलत दिशा में ना चलें जाएं इसका डर उसे घेरे रहता। वह तारा को हर संभव संभालने का प्रयास करती। वह कहती- "तारा ! लड़की की इज्जत बहुत कीमती होती हैं इसे गंवाना नहीं चाहिए... ! !"

तारा हमेशा की तरह कोई सवाल किए बगैर जवाब देती- "हाँ माँ, तुम चिंता मत करो, मैं किसी के भी बहकावे में नहीं आऊंगी"। लेकिन एक दिन गांव के ऊंची जाति के लड़कों ने तारा को उठवा लिया और उसकी अस्मत को तार-तार कर दिया... गांव वाले एक हो गए कोर्ट कचहरी हुई, आरोपी जेल चलें गए और सरकार की ओर से तारा को आज उसकी लूटी इज्जत का मुआवजा मिला- चार लाख रुपए। तारा उसी चेक को देखते हुए बुदबुदाई- "मेरे दो स्तन और एक योनि की कीमत तय हुई है- चार लाख रुपए। "

218, HSR lay out, 16th main road, HSR Sector No 3, Banglore- 560102

Mob. 8880965006

चलते-चलते अथिति संपादक की एक लघुकथा

पियक्कड़

सन्दीप तोमर

"छठा पेग लेने के बाद भले ही दोनों दोस्तों की जुबान लड़खड़ा रही थी, फिर भी शराब उनके सिर चढ़ कर बोल रही थीI

"यार सुदीप ! जा एक बोतल और ले कर आ। ” पम्मी ने नशे में झूमते हुए कहाI

"अबे नहीं यार। तूने वादा किया था कि अब जब भी बैठेंगे दो-दो पेग से ज्यादा नहीं लेंगे। और एक बोतल गटकने के बाद अब दूसरी ?" सुदीप मानो और पीने के लिए तैयार नहीं था।

"अरे अब तो आकर मूड बना है भाई। " पम्मी ने लडखडाती जुबान में कहा।

"अबे तेरा मूड है या उस साली अनीता की हवस ? जो दिन ब दिन बढती ही जा रही है ?”

सुदीप लगभग चिल्लाया।

“अबे साले भूल गया कि उसको हवस का पहला सबक तुमने ही सिखाया था ?” पम्मी ने उसे वास्तविकता का आईना दिखाते हुए कहाI

"उस छिनाल का नाम मत ले मेरे सामने। अब तो साली का नाड़ा भी बमुश्किल ही बंधता होगा। " सुदीप के स्वर में बला की घृणा भरी हुई थीI

पम्मी का दिल किया कि सुदीप के मुँह पर जोर से थूके। आक थू ! ! मगर थूक मानो गले में ही कहीं फंस कर रह गया था।

–उत्तम नगर, नई दिल्ली, मो. 83778 75009

माँ ईश्वर नहीं होती...

अक्सर देखा है माँ को
किसी ईश्वर की मूर्ती
के सामने टूटते हुए
पनीली निगाहों से
बिखरते हुए
जब ईश्वर उसकी नहीं
सुनता
तब ईश्वर से लड़ते हुए

माँ को देखा है
पहाड़ में रास्ता बनाते हुए
रास्ता न मिलने पर
बिगाड़ते हुए
अपने बच्चों के लिए
दूसरों के बच्चों से
ईर्ष्या करते हुए

जीवन के दो-राहे पर
कभी पति के लिए
तो कभी बच्चों के
लिए तो कभी
अपनी माँ के पक्ष में
खड़े होते हुए
माँ को देखा है
किसी और पर
गुस्सा निकालकर
खुद रोते हुए

माँ को देखा है
अतिभावुकता में
कमजोर फैसले लेते हुए
मनवांछित न होने पर
पत्थर होते हुए
फटेहाल में भी
हमेशा बच्चों की सुनते हुए
वांछित फल न देने पर
पछताते हुए
वह पत्थर नहीं होती
ईश्वर की तरह
माँ ईश्वर नहीं होती...

डॉ. रेनू यादव
असिस्टेंट प्रोफेसर
भारतीय भाषा एवं साहित्य विभाग
गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय
ग्रेटर नोएडा – 201312
फोन – 9810703368
ईमेल – renuyadav0584@gmail.com

किस ओर ?

संवेदनाओं के मृत,
लिबास को ढोता,
पूछ भी नहीं पाता,
मैं किस ओर जा रहा हूँ ?
ना समय, ना ही ज्ञान,
कठपुतली मात्र मैं,
हर मुद्दे को बस,
धार्मिक सियासी
रंग दिए जा रहा हूँ।
सोचते थे कभी, ऐसा होगा
'इक्कीसबीं सदी का भारत'
दहल जाता है दिल
'काला इतिहास'
मैं रचने जा रहा हूँ
मैं किस ओर जा रहा हूँ ...?

पुणे, मो. 92255 27666

हमारे देशवासी

मेरे गाँव में
तीन व्यापारी हैं
तीनों के व्यापार की
दुनिया की मंडियों में
तूती बोलती है।
इनमें दो व्यापारी
एक ही सोचवाले वर्ग के हैं;
यों तो
दोनों के बीच छत्तीस का रिश्ता है
व्यापार का सहज स्वभाव है;
किन्तु,
जब तीसरा आगे बढ़ने लगता है
तब दोनों
पलटवार के लिए
छत्तीस से पलट कर तिरसठ बन जाते हैं।
इस तरह तीनों
लड़ते-झगड़ते
धन्ना-सेठ बन चुके हैं,
ग्रह-नक्षत्रों को भी
चुनौती दे डालते हैं;
किन्तु,
मेरे गाँव के लोगों की
रीढ़ की हड्डी
विकसित ही नहीं हुई है अबतक
वे लता ही हैं;
वृक्ष नहीं बन सके हैं,
खड़ा होने के लिए
इन्हें आश्रय तो चाहिए ही,
किन्तु, यह भी आसान नहीं;
यदि एक का आश्रय लेते हैं
तो दूसरा, तीसरा
बिदक जाता है।
इनमें से किसी का बिदकना
गाँववालों के अस्तित्व को
हिला जाता है
और उनके नन्हे प्राण-पखेरु
आतंक के अन्धेरे में
अपने डैने समेट लेते हैं।

ऐसे ही,
नहीं जी रहे क्या
हमारे देशवासी?

डॉ. राजेश्वर प्रसाद सिंह, सेवा-निवृत्त प्राध्यापक
धर्म समाज संस्कृत महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर
आवास-ग्राम-सलेमपुर, वार्ड-8,
एरोप्लेन रेस्टूरेन्ट के सामने, भाया-उमानगर,
मुजफ्फरपुर-842004.
ईमेलः-dr.rajeshwar1956@gmail.com
मो.-9931268188

"हमारे अंदर अज्ञान से जमे हिमखंड को तोड़ने के लिए पुस्तक एक कुठार है।" -काफ्का

समीक्षा,संवाद और सूचनाओं की

साहित्य नंदिनी

वर्ष-6, अंक-11, नवम्बर 2024

RNI No. DELHIN/2017/74713/19-02-18

आलेख पृष्ठ सं. 3 पर अजित कुमार राय

समीक्षा हेतु प्राप्त पुस्तकें

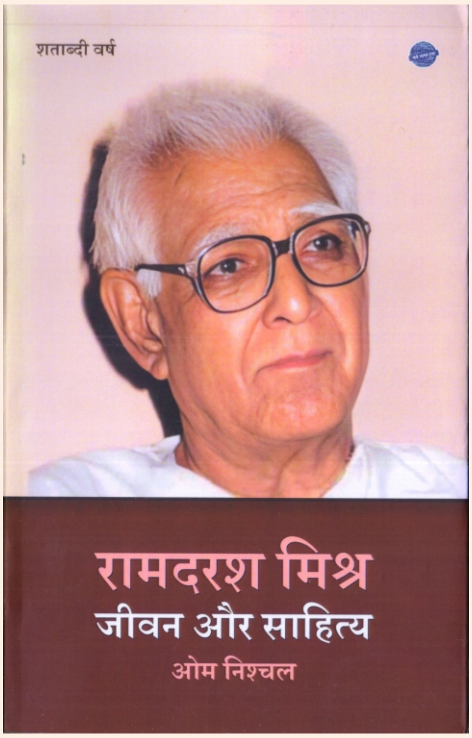

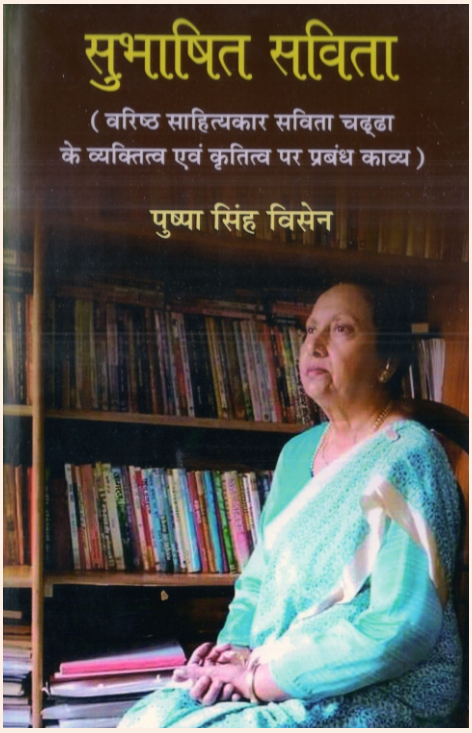

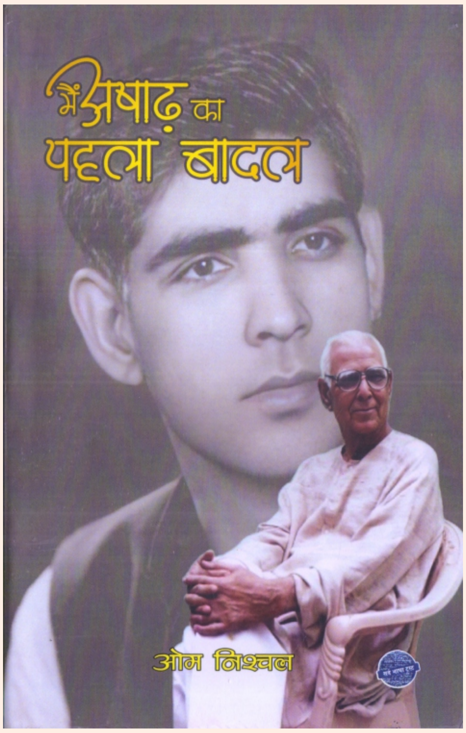

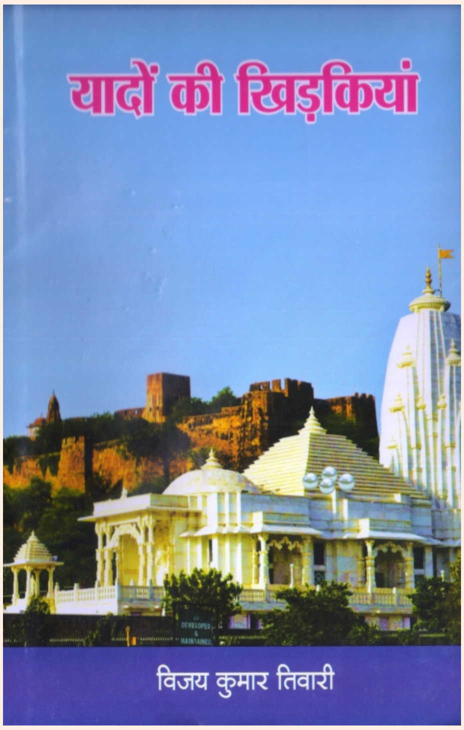

संपर्क : संपादक : देवेन्द्र कुमार बहल, बी-3/3223, वसंतकुंज, नई दिल्ली 110070
मो. 9910497972 / 8527697972, ई-मेल : abhinavimroz@gmail.com

समीक्षा

डॉ. रामविलास शर्मा के सृजनात्मक व्यक्तित्व में भारतीयता

अजित कुमार राय

आज की विज्ञापन गंधी संस्कृति में डॉ. रामविलास शर्मा और कुबेर नाथ राय अपने आयतन में सीमित रहकर ठोस साधना करने वाले ऐसे सभ्यता समीक्षक हैं जो कि अंग्रेजी के प्रोफेसर और हिंदी के लेखक हैं। अकेले हिन्दी के दस आलोचकों के बराबर काम करने वाले युग-चिन्तक रामविलास जी का कद महज आलोचक की तुलना में कहीं अधिक ऊँचा है। ऊँचगाँव तो उनकी जन्मभूमि है। बड़े-बड़े नामवर आलोचकों के रंग बदलते अवसरवादी भाषणों के बरक्स उनका अड़ियल आलोचक अधिक आकर्षित करता है । एक दौर में जब वे प्रगतिशील लेखक संघ के महासचिव थे तो अमृतलाल नागर के शब्दों में कहें तो वे मारधाड़ वाली आलोचना करते रहे। उन्होंने शर्मा जी को सलाह दी कि जो कुत्ता तुम्हारी ओर देखकर भूँके, उसे क्या लाठी लेकर दौड़ाते रहोगे ? कुछ ठोस काम क्यों नहीं करते ? रामविलास जी निराला की तरह ही कई मोर्चों पर लड़ते रहे। वे निराला से पंजा भी लड़ाते थे। वे मार्क्सवाद का भारतीय संस्करण रचते रहे। तीन खंडों में प्रकाशित 'निराला की साहित्य साधना' आज भी आलोचकों के लिए एक चुनौती है। इसी पुस्तक पर उन्हें 1970 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला था। किसी कवि के समूचे सृजन को उसके जीवन संघर्ष और युगीन परिवेश के साथ जोड़कर कैसे देखा जाना चाहिए, यह कृति इस तथ्य का मानक है। निराला के नायक गोस्वामी तुलसीदास जी को सम्बोधित अपने आलोचना-ग्रंथ 'भारतीय सौन्दर्य बोध और तुलसीदास' में वे कहते हैं कि कलाओं के पारस्परिक संबन्ध और विकास के अध्ययन के लिए भारतीय दर्शन जितना ठोस आधार प्रदान करता है, उतना यूरोपीय दर्शन नहीं। मैं तुलसी के कला पक्ष के अनुशीलन में प्रवृत्त हुआ तो यह मेरे लिए एक चकित कर देने वाला अनुभव था कि तुलसीदास के समय तक जो भारतीय स्थापत्य तथा चित्रकला या भित्ति चित्रों का विकास हुआ था, तुलसी को न सिर्फ इन सबका ज्ञान था, बल्कि इनका बहुत अच्छा प्रयोग उन्होंने अपने काव्य में किया। इस लिहाज से वे हिन्दी के बहुत बड़े कवि, बहुत सचेत और मेधा संपन्न कवि ठहरते हैं। ज्ञातव्य हो कि वर्णाश्रम व्यवस्था को पुरस्कृत करने वाले तुलसी को नामवर सिंह खारिज कर चुके थे। उनके इस प्रस्ताव को जनमानस खारिज कर देता है तो बाद में नामवर ने भूल सुधार किया कि तुलसी को निकाल दें तो हिन्दी में बचेगा क्या ? रामविलास जो स्वीकार करते हैं कि तुलसी को संस्कृत और हिन्दी की समूची काव्य-परंपरा की बहुत अच्छी जानकारी थी। जिससे उनकी कविता में एक विशेष प्रकार की परिपक्वता लक्षित होती है।

रामविलास शर्मा ने ऋग्वेद का पुरातत्व, वास्तुकला, नृतत्व शास्त्र, भाषा विज्ञान और समाजशास्त्रीय अध्ययन किया। साम्राज्यवादी दुष्प्रचार के प्रभाव में महापंडित राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव और दिनकर ने भी 'संस्कृति के चार अध्याय' में गलत निष्कर्ष निकाला कि आर्य भारत के मूल निवासी नहीं हैं। वे बाहर से आए और उन्होंने सिन्धु घाटी सभ्यता को नष्ट किया तथा द्रविड़ों का नाश किया। रामविलास जी ने इसको तीखी आलोचना की और सिद्ध किया कि आर्य संस्कृति भारत की मौलिक चिन्तन शैली है। पश्चिम एशिया और ऋग्वेद' में ऐतिहासिक स्थापनाएँ हैं तो भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश' में ऋग्वेद का दार्शनिक पक्ष विश्लेषित हुआ है। यह अनूठी पुस्तक है। उनकी पाँच-छः पुस्तकों में ऋग्वेद पर एक अध्याय मौजूद है। उन्होंने मार्क्सवादी दृष्टि से भारतीय संस्कृति और दर्शन की गम्भीर अंतर्यात्रा की है। साहित्य से जुड़े हुए सांस्कृतिक और समाजशास्त्रीय प्रश्नों से उलझना एक जोखिम भरा काम है। वे मानते हैं कि संस्कृति और दर्शन के क्षेत्र को रूढ़िवादियों के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता। इसलिए परंपरा की पहचान के लिए भारतीय संस्कृति, दर्शन और भाषा की जड़ों तक जाने का गम्भीर काम करने वाले **डॉ. शर्मा ने साठ से अधिक पुस्तकें लिखी हैं जो राजेन्द्र यादव के मन में एक आतंक पैदा करती हैं। हंस के संपादकीय में श्री यादव ने लिखा था कि डॉ. रामविलास शर्मा की शारीरिक उम्र नब्बे साल, मानसिक उम्र डेढ़ सौ साल और बौद्धिक आयु हजार साल की थी।**

डॉ. रामविलास शर्मा मानते हैं कि सिर्फ समकालीन साहित्य का अध्ययन ही काफी नहीं है, भारतीय दर्शन से भी अभिज्ञ होना चाहिए। धर्म और संस्कृति दो अलग-अलग

चीजें हैं। संस्कृतिविहीन मनुष्य, मनुष्य ही नहीं है। कर्मकाण्ड से पृथक धर्म का वैचारिक पक्ष वरेण्य है जो नैतिक चेतना, उदारता और मानवीय करुणा से परिस्फूर्त है। मार्क्स ने यह कभी नहीं कहा कि हम केवल नास्तिक मजदूरों का ही संगठन करेंगे। उसमें अनेक पूजा पद्धतियों और मत-मतान्तरों के लोग भी हो सकते हैं। स्वयं रामविलास जी ने स्वामी विवेकानंद की दो पुस्तकों कर्मयोग और राजयोग का हिन्दी में अनुवाद किया था और महाराणा प्रताप पर एक नाटक भी लिखा था। राणाप्रताप पर एक बहुत शानदार निबन्ध तो प्रेमचंद ने भी लिखा है जो कथित प्रगतिशील लेखकों के लिए सुपाच्य नहीं है। वे तो किसी खंडित कबीर को ही पूजते हैं। वे अपने जीवन से ही नहीं, कबीर के जीवन से भी आध्यात्मिकता को काट देते हैं। रामविलास जी कहते हैं कि प्रेमचंद एक उपन्यासकार के रूप में परिवार के भीतर घुसकर उस संघर्ष के अन्तर्बाह्य सभी रूपों को दर्शाते हैं। कहना नहीं होगा कि परिवार नामक संस्था भारतीयता की अवधारणा का एक मजबूत घटक है। रामविलास जी जातीय अस्मिता को वृहत्तर आशयों में ग्रहण करते हैं लेकिन आज उस पर ग्रहण लगा हुआ है। अपनी भाषा और संस्कृति के प्रति उनमें गौरव-बोध कूट-कूट कर भरा हुआ है। भाषा विज्ञान के क्षेत्र में उनके अवदान का तो अभी मूल्यांकन होना बाकी है। अपने आलोचना-कर्म के सम्बन्ध में वे कहते हैं कि तुलसी की रघुनाथगाथा की तरह ही मुझे स्वान्तः सुखाय आलोचना लिखने में आनन्द आता है। शर्मा जी का मानस खाँटी भारतीय, बल्कि ऋषिकल्पी संरचना का है। **विश्व हिन्दी सम्मेलन, लंदन में रामविलास जी को सम्मानित किया गया किन्तु वे वहाँ सम्मान ग्रहण करने नहीं गए। इसलिए नहीं कि यह विदेश में आयोजित था। बल्कि पुरस्कारों से पराङ्मुख और निस्पृह उनकी चेतना ने व्यास सम्मान और हिन्दी अकादमी के शलाका सम्मान की प्रभूत धनराशि को साक्षरता के प्रसार के लिए खर्च करने के विनम्र आग्रह के साथ लौटा दिया। यह उत्सर्गमूलकता का प्रतिमान है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने जब सागर विश्वविद्यालय में अंग्रेजी विभागाध्यक्ष के पद पर रामविलास जी को आमंत्रित किया तो शर्मा जी ने कहा कि वाजपेयी जी ! दिल्ली में रहकर कुछ गम्भीर काम करने दीजिए। जब उन्हें सोवियत लैंड पुरस्कार दिया गया तब उनकी पत्नी बीमार चल रही थीं तो उन्होंने सोवियत रूस की यात्रा के आमंत्रण को अस्वीकार कर दिया। लेखन को जीने वाला और पारिवारिक दायित्व का निष्ठा से निर्वहण करने वाला यह फकीर आपादमस्तक भारतीय है।**

कुछ प्रगतिशील आलोचकों ने आचार्य रामचंद्र शुक्ल पर ब्राह्मणवाद का आरोप लगाया तो उसके उत्तर में शर्मा जी ने 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना' नामक पुस्तक लिखी। प्रलेस के भीतर रहकर प्रतिवाद की ऐसी प्रखर चेतना कितनी काम्य है! जहाँ इलाहाबाद में प्रगतिशील लेखक संघ के संयोजक धर्मवीर भारती को उनके पद से सिर्फ इसलिए हटा दिया गया था कि प्रयाग में एक काव्य गोष्ठी में उन्होंने सुभाषचंद्र बोस पर एक कविता पढ़ दी थी लेकिन रामविलास जी इसके लिए पूरे संगठन को दोषी ठहराने के पक्ष में नहीं हैं। धर्मवीर भारती ने भाषा-समस्या पर लिखे गए रामविलास शर्मा के अधिकांश लेख धर्मयुग में छापे थे। शर्मा जी का कहना है कि भारत में सही भाषा नीति होनी चाहिए और अंग्रेजी के बजाय भारतीय भाषाओं को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। अलग-अलग राज्यों में बँटे हिन्दी भाषियों का एक वृहद हिन्दी प्रदेश बनाया जाना चाहिए। कोई भी देश या समाज अपनी भाषा को छोड़कर समृद्ध नहीं हो सकता हिंदी भाषी राजनीतिक रूप से बँटे हुए हैं। गाँधी जी सोचते थे कि गुजराती बोलने वाले चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, वे एक जाति के हैं। इसी तरह बंगाली एक जाति है। लेकिन आज जबकि हर बड़े प्रदेश का विभाजन हो गया तो वृहत्तर हिंदी प्रदेश की परिकल्पना अव्यावहारिक लगती है और फिर इससे क्षेत्रवाद और भाषावाद की समस्या अनसुलझी ही रह जाती है। किन्तु उनके मौलिक और व्यापक सोच को सत्यापित तो करता ही है यह तथ्य। वैसे रामविलास जी का कहना है कि मनुस्मृति में वर्णित वर्ण व्यवस्था समाज में उस रूप में कहीं भी प्रचलित नहीं थी। और शूद्रों को भी पगार दी जाती थी। भारत का वस्त्र उद्योग इतना अधिक विकसित था कि पूरी दुनिया में कहीं और इतना अच्छा कपड़ा नहीं बनता था। गाँधी जी ने भी लोगों में यह भावना पैदा की थी कि हम अपनी जरूरतों के लिए उत्पादन स्वयं करें। उनका स्वदेशी आंदोलन साम्राज्यवाद के विरोध का सबसे कारगर उपाय था। विदेशी पूँजी की हमारे देश में खतरनाक भूमिका है। इसे गाँधी जी ने अच्छी तरह समझ लिया था और स्वदेशी आंदोलन के जरिए उन्होंने आजादी की लड़ाई को गाँव- गाँव में पहुँचा दिया था और इस **देशव्यापी स्वाधीनता आंदोलन की सफलता में सम्पर्क भाषा हिन्दी का अन्यतम अवदान था। जबकि आज स्वतंत्र भारत में अंग्रेजी भाषा नहीं, माध्यम बनने का सपना देख रही है। कम से कम उसने हिन्दी को गाँवों में धकिया दिया है तो क्या इसे मानसिक और सांस्कृतिक पराधीनता का दूसरा चरण माना जाए ?**

डॉ. रामविलास शर्मा सम्पूर्ण भक्ति आन्दोलन की चेतना को प्रगतिशील मानते हैं और 1857 के प्रथम स्वाधीनता आंदोलन को

राज्य क्रान्ति। जो सामंतों के नेतृत्व में नहीं, फौज के सिपाहियों द्वारा प्रवर्तित था और एक वर्ग से दूसरे वर्ग को हस्तांतरित होता रहा। कुछ इतिहासकार इसे स्वाधीनता संग्राम नहीं मानते थे, किन्तु स्वयं मार्क्स ने 1857 के आसपास भारत के बारे में अपनी धारणाएँ बदली थीं। एक अखबार में मार्क्स और एंगेल्स प्रतिसप्ताह भारत की घटनाओं पर लिखते थे। जिनका संकलन 1959 में मास्को से 'इंडियाज़ फर्स्ट वॉर ऑफ़ इंडिपेंडेंस' नाम से छपा है। यूरोप और भारत के इतिहास को कैसे समझना चाहिए और वर्ग तथा वर्ण में क्या अन्तर है, यह जानने के लिए रामविलास जी की पुस्तक 'भारतीय इतिहास और ऐतिहासिक भौतिकवाद' का अनुशीलन करना चाहिए।

कुबेरनाथ राय ने अपने लेखन में मनुष्य, पृथ्वी और ईश्वर के त्रिक का संयोजन किया है और रामकथा को सूर्यकाव्य माना है। कृष्ण गीता में कहते हैं- 'समासों में मैं द्वन्द्व समास हूँ।' द्वन्द्व समास अर्थात् संयोजक भूमिका-मनुष्य और मनुष्य के बीच, मनुष्य और ईश्वर के बीच, मनुष्य और पृथ्वी के बीच। वास्तव में ईश्वर के बिना मनुष्य का जीवन अधूरा है बल्कि असंभव है। ईश्वर तो हमारी अंतश्चेतना है, सर्वभूतान्तरात्मा है, विश्व-प्रज्ञा है। ईश्वर तो हमारा नैतिक अधिष्ठान है। ईश्वर से जुड़कर ही मनुष्य की चेतना अपने अहंकार को 'अन्तर्यामी' का रूप दे सकती है। और इस अंतर्यामी को उस 'अक्षर' के साथ जोड़ सकती है जिसके प्रशासन में सारे सूर्य, चन्द्र, तारा और ग्रह चलते हैं, ऋतुएँ अपना चक्र पूरा करती हैं। **श्रोत्रिय जी ठीक ही कहते हैं-वस्तु जगत को ही यथार्थ मानने के तीखे बोध ने ईश्वर को मार दिया।** लेकिन क्या इससे धर्म के नाम पर होने वाले झगड़ों का अन्त हुआ? उल्टे इसने झगड़ने का ऐसा निर्भय समरांगण दे दिया जहाँ कोई आन्तरिक मूल्यपरक बाधा ही नहीं रही। अगर ईश्वर के मरने से साम्प्रदायिकता मर जाती तो ईश्वर की मौत का भी जश्न मनाया जा सकता था। मनुष्य से मनुष्य को जोड़ने में यदि ईश्वर बाधक बने तो उसकी बलि चढ़ाई जा सकती है किन्तु वह तो प्राणों की ऊर्जा है, जीवन का रस है- वह 'अमृता दृष्टि' है जिसे पाकर जीवन विष से सारी शिकायतें दूर हो जाती हैं। भारतीय मनुष्य सारे अभावों, गरीबी और पीड़ाओं के बावजूद पर्वो का उल्लास मना सकता है बल्कि अभावों का उत्सव मना सकता है।

भूख को 'उपवास' का अर्थ देना ही मेरी दृष्टि में भारतीय संस्कृति का विश्व को अवदान है जिसे न समझ पाने के कारण ही वी.एस. नॉयपाल भारत को 'घायल सभ्यता' और 'अन्धकार क्षेत्र' के रूप में देखते हैं। उन्हें भारत 'फंतासियों और खंडहरों' का देश नजर आता है। यद्यपि उनकी इस स्थूल दृष्टि या अवधारणा को हमारे सांस्कृतिक पाखंड ने ही बल प्रदान किया और वे हमारी सभ्यता की विकृतियों को ही संस्कृति समझ बैठे- "गाँधी की संवेदनशील कर्मठता यहाँ के भावशून्य ध्यान और निर्विचारता में बदल गयी। भारत की असफलता के केन्द्र में यही पूजा भाव है जो हर यथार्थ को उदात्त प्रतीकों में रूपान्तरित कर उसे पूज्य बना डालता है और यथार्थ यथावत घिनौना बना रहता है।" किसी दूसरे ग्रह से देखी गई धरती की तरह यह भारत का जमीनी यथार्थ तो है परन्तु जिन्होंने ध्यान के एक भी प्रयोग नहीं किए, ध्यान के संबंध में उनकी 'वैज्ञानिक' टिप्पणी पर तरस आता है। जिस प्रकार मैक्समूलर ने स्थापना दी कि आर्य भारत में बाहर से आए संभवत: वे जर्मन, ग्रीक, फारसी आदि जाति समूह का हिस्सा थे। उसी प्रकार नॉयपाल को भी लगता है कि भारतीय नेताओं में दधीचि की हड्डियाँ गलाने वाले गाँधी सबसे कम भारतीय थे। गोया हिन्दुस्तान में तो राक्षसों को रहना चाहिए अथवा असभ्य आदिवासियों को। यहाँ सभ्याचरण से सम्पन्न मनीषी कैसे हो सकते हैं? गोया बुद्ध और विवेकानन्द को पश्चिम ने ही पैदा किया और सूर्य का उदय शायद पश्चिम में ही होता है। पूरे विश्व को उपनिवेश बनाकर लूटने और संकीर्ण स्वार्थों के लिए देशों को बर्बाद करने वाली पश्चिमी सभ्यता के प्रति नायपाल का आलोचनात्मक विवेक मर जाता है। पश्चिम उन्हें प्रकाश का उद्गम नजर आता है। नोम चॉम्स्की उनसे कहीं अधिक ईमानदार, साहसी और प्रबुद्ध हैं जिन्होंने एकेडमिक जगत को आत्मालोचना और सत्य के निर्वाचन का दायित्व बोध दिया बहती रोशनियों में ठहरे अँधेरे का अनावरण किया। दुर्भाग्यवश आचार्य द्विवेदी और दिनकर भी मैक्समूलर के प्रभाव में बह गए और अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति (फूट डालो और राज्य करो) को समझ नहीं पाए। उनकी कूट बुद्धि आर्यों और द्रविणों को आपस में लड़ाती ही नहीं, अंग्रेजों के आक्रमण और उपनिवेश को वैधता भी प्रदान करती है। अब आर्य बाहर से आकर यहाँ कब्जा कर सकते हैं तो अंग्रेज क्यों नहीं। वह तो डॉ. रामविलास शर्मा ने इतिहास, समाजशास्त्र, पुरातत्व, भाषा विज्ञान, साहित्य, दर्शन, मिथक, देवतन्त्र आदि अनेक स्रोतों से प्रमाणित कर दिया कि आर्य भारत के मूल निवासी थे। अंग्रेजी के प्रोफेसर होने के नाते वे अंग्रेजों की चाल को बखूबी समझते थे। उनका लक्ष्य अतीत की पुनर्व्याख्या या पुनरुत्थान नहीं, बल्कि अतीत के विरूपण से विभाजित भारत को किसी नए विभाजन की आशंका से सावधान करना है। आचार्य द्विवेदी यदि सांस्कृतिक इतिहास के सर्जक हैं तो डॉ. शर्मा ने संस्कृति का नया इतिहास लिखा और विदेशी साम्राज्यशाहों के चमकदार 'इतिहासवाद' का पात्र उलट दिया जिसके नीचे सत्य छिपा था। बड़ा विचित्र विभ्रम है कि

भौगोलिक विविधताओं और 'विरुद्धों के सामंजस्य' वाले दर्शन के देश में आर्य और द्रविण जैसी भिन्न प्रकृति के लोगों का साहचर्य क्यों नहीं संभव है। और मेरा एक सवाल है कि यदि आर्य जर्मनी आदि देशों से आए तो सभी तो यहाँ आ नहीं गए होंगे। क्या वेदांत दर्शन के समरूप (सर्वांगसम नहीं) संस्कृत भाषा और सोच का वह ढाँचा तत्कालीन विश्वमंच के किसी और भूभाग के साहित्य में मौजूद है ? अगणित महापुरुषों को जन्म देने वाली उर्वर धरती तब तक बंजर थी जब तक बाहर से आर्य आ नहीं गए। अपनी जन्मभूमि को स्वर्ग से अधिक श्रेयस्कर मानने और सोने की लंका को छोड़कर अयोध्या लौटने वाला 'कूटस्थ' चिंतन 'स्याद्वादी' मुद्रा में भी अपने मूल उद्गम को कभी याद क्यों नहीं करता ? हो सकता है आत्महंता जन-बादी इतिहासकार इसका उत्तर ढूँढ़ें अथवा वेद के रचनाकाल को खींचकर ईसा बाद सिद्ध करने का प्रोजेक्ट हाथ में लें। यद्यपि नोबेल लॉरिएट टी. एस. इलियट 'द वेस्ट लैण्ड' शीर्षक अपनी जटिल प्रलंबित कविता में द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका से उपजे संत्रास का समाधान भारतीय दर्शन की जमीन पर ही देखते हैं। आर्य द्रविड़ के पार्थक्य और अभिन्नता या 'द्वैताद्वैत' संबंध को मानस के एक प्रसंग द्वारा समझा जा सकता है। रावण जब हनुमान से पूछता है कि तुम कौन हो

कह लंकेस कवन तैं कीसा। केहि के बल घालेहि बन खीसा।। ... तो हनुमान उत्तर देते हैं -

सुनु रावन ब्रह्माण्ड निकाया। पाइ जासु बल विरचति माया।।

जाके बल बिरंचि हरि ईसा पालत सृजत हरत दस सीसा।। ...

जाके बल लवलेस तें, जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जाकरि हरि आनेहु प्रिय नारि।।

अर्थात् रावण में भी राम की ही ऊर्जा प्रवाहित हो रही हैं।

एडवर्ड सईद भी अंग्रेज विचारकों के बौद्धिक षड्यंत्र का पर्दाफाश करते उनके बहुप्रचारित सिद्धांत 'सभ्यताओं के संघर्ष' की खूब खबर लेते हैं। पश्चिमी दुनिया ने 'इस्लामिक आतंकवाद' को सरलीकृत करके पूरी दुनिया के मुसलमानों पर चस्पा कर दिया है। वे इस बात से बहुत क्षुब्ध हैं कि "पूरब पश्चिम द्वारा रची गई एक फैंटेसी है जिसके माध्यम से पश्चिम इसे अपने से अलग करता है। इसे 'अदर' के रूप में विवेचित करता है। निश्चित रूप से इसके पीछे उसका वह सभ्यतागत अहं बोध है जिसके तहत उसने अपने उपनिवेशों को लूटा।" **सच तो यह है कि अहं बोध ही असभ्यता का लक्षण है। कम से कम सुसंस्कृत होने की पहचान तो नहीं ही हैं।** जातीय अस्मिता या आत्मगौरव भी आत्महीनता से उबरने या आत्म-परिष्कार के संदर्भ में ही सही है, परपीड़न के संदर्भ में नहीं। वैसे यह सच है कि पश्चिम अधिक सभ्य है किन्तु भारत अधिक सुसंस्कृत।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी मनुष्य के सर्वोत्तम चिंतन और सर्जनात्मक आचरण-पद्धति को ही संस्कृति की संज्ञा देते हैं। संस्कृति और परंपरा दोनों पार्श्ववर्ती शब्द हैं। परंपरा संस्कृति का संवाहक रथ है। संस्कृति द्विवेदी जी के लिए आन्तरिक भावात्मक सत्ता है। वे संस्कृति को लोकोपकार की उस उदात्त भूमिका में देखते हैं। जिसका सर्वोपरि लक्ष्य पूर्ण सभ्यता की रचना है। उसकी प्राथमिकता मनुष्य को उच्चतम नैतिक गुणों से लैस करना है। इसीलिए 'चारुता' की साधना प्रक्रिया में कलाकार 'ज्यों का त्यों' के सत्य का अन्यथाकरण करता है। कला या रचना में वस्तुनिष्ठ यथार्थ से अधिक कलाकार की अन्तर्वेदना शामिल है। वे इतिहास और संस्कृति को जीवन के ठोस संदर्भों में देखना चाहते थे। अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में भी उन्होंने सांस्कृतिक परिवेश का ही निर्माण किया है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में इतिहास का अतिक्रमण कर बाण को आधुनिक बनाने और उनकी संवेदना को अपनी संवेदना में अन्तरित करने का महत् कार्य सांस्कृतिक अनुष्ठान को वर्तमान के लिए उपादेय बनाता है। उनका सांस्कृतिक अनुशीलन सम्राटों को नहीं, सामान्य जनता को सम्बोधित है। इतिहास की भव्य तरलताओं से अधिक वे लोक जीवन की बहुरंगी छवियों से आकृष्ट हैं। इस संस्कृति के निर्माण में आर्येतर सभ्यता (द्रविण, यक्ष, गंधर्व, नाग, असुर, वानर आदि) का यथेष्ट योगदान है। 'अशोक के फूल' में खिलती हुई सांस्कृतिक संचेतना हमें मानवीय सभ्यता की निरंतरता और सौंदर्य-बोध का साक्षात्कार कराती है- "धरती से मिले बिना स्वर्ग की वस्तुएँ मनोहर नहीं होतीं।" स्वर्ग एक वैकल्पिक संसार है, जहाँ सारी चीजें अपने श्रेष्ठतम और उदात्ततम रूप में मौजूद और अक्षुण्ण हैं तथा जहाँ जीवन का केवल शुक्ल पक्ष ही अस्तित्वमान और स्थिर है। यूरोपीय शोक गीतों की तरह निराला को अपनी अभिव्यंजना को अलंकृत करने के लिए वनदेवियों के अवतरण की जरूरत नहीं पड़ती। 'सरोज स्मृति' पुत्री के निधन पर कवि पिता द्वारा लिखा गया शोक गीत है जो यूरोपीय साहित्य में सुदुर्लभ है। प्रेमी नहीं, पिता पुत्री का शब्द-तर्पण कर रहा है।

निराला की कल्पना इस धरती से दूर कोई मनोरम अपार्थिव लोक नहीं रचती। वह पृथ्वी की दृढ़ आकर्षण शक्ति से बँधी हुई है। **निराला के लिए स्वर्ग इसी धरती पर नर्गिस के सौन्दर्य में है, जूही की कली में है, वनबेला में है। पृथ्वी का गुण है गंध। निराला की कल्पना धरती के भीतर पैठकर बनबेला की सुगंध के साथ ऊपर उठती है।**

मस्तक पर लेकर उठी अतल की अतुल बास इस धरती की सम्पूर्ण गंध निराला की रचनाओं में व्याप्त है। सन् उन्नीस सौ तेईस में निराला ने जब 'मतवाला' निकाला तो उसके मुखपृष्ठ पर निम्न पंक्तियाँ अंकित थीं-

अमिय गरल, शशि शीकर रविकर / राग-विराग भरा प्याला।
पीते हैं जो साधक, उनका प्यारा है यह मतवाला।

जीवन और मृत्यु, अमृत और विष, राग और विराग सृष्टि के इस सनातन द्वंद्व पर एक सृजन शील प्रस्थान 'जयशंकर प्रसाद' शीर्षक अपनी आलोचना- कृति में आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने कहा है कि कामायनी में वह शैव दर्शन है। जहाँ अमृत और हलाहल की सत्ताएँ एकरस हो गई हैं। जीवन में निहित सत् और असत् की समरसता को उत्कीर्ण करने के बजाय आज यथार्थ वाद के नाम पर कवियों ने खोज-खोज कर नरक की सृष्टि कर डाला।

'राम की शक्ति पूजा' में राम-रावण का अपराजेय समर लिखा तो गया है ज्योति के पत्र पर, किन्तु अक्षर सब अमावस के अँधेरे के हैं। विविध चित्रों की पृष्ठभूमि में इतना गहन अन्धकार है कि फलक की ज्योति सब ढँक गई है। तुलसी दास जी का मुख्य संघर्ष आन्तरिक है। उन्हें अपने संस्कारों से मुक्ति पानी है, रत्नावली के प्रति अपनी आसक्ति से लड़ना है। उन्हीं की तरह महावीर पुरानी संस्कृति पर ज्ञानोद्धत प्रहार करते हैं। यहाँ निराला की आँखें भीतर एक नये लोक में खुल गई हैं, जहाँ संसार के छायाचित्र दिखाई देते हैं। यहाँ तक आते-आते निराला का संघर्ष और तीव्र हो गया है और उन्होंने अपने दूसरे मन को पहचान लिया है। वह रहा एक मन और राम का जो न थका।

सविकल्प समाधि नहीं, जहाँ चेतना मन से तादात्म्य तोड़ कर विक्षेष के नाटक देख रही हो, बल्कि वेदना की किरणों ने वज्र कठोर अन्तर को बीच से तोड़ कर उसके दो हिस्से कर दिए हैं। एक पराजित मन और दूसरा अपराजित। बैसवाड़े के विप्र वर्ग से लेकर संपादकों-प्रकाशकों तक निराला के क्लेश के लिए जहाँ यह परिवेश उत्तरदायी है, वहाँ कोई अदृश्य नियति भी मानो उनकी विजय को पराजय में बदल देती है। इसके लिए महाप्राण निराला आजीवन शक्ति साधना करते रहे लेकिन अब वीणा वादिनि वाणी वन्दना या शक्ति साधना जैसे प्रत्यय कथित प्रगतिशील लेखक के मन में उबकाई पैदा करते हैं।

स्वाधीनचेता लेखकों की दो प्रकार की सामाजिक भूमिका होती है। तात्कालिक और दूरगामी प्रभाव वाली सामाजिक-राजनैतिक विसंगतियों के प्रतिवाद में आम जनता को जाग्रत और आंदोलित करना बुद्धिजीवी वर्ग का दायित्व है। शर्मा जी कहते हैं कि और कुछ नहीं तो पीठ पर पोस्टर बाँधकर ही निकल जाइए। साथ ही एक सर्जक को क्लासिकल महत्त्व की रचनाएँ भी देनी चाहिए जो आगे चलकर पूरे युग को प्रभावित करें। कविता और कहानी का मनुष्य के हृदय पर संवेदनात्मक प्रभाव पड़ता है। आज तो यह संवेदना भी संकुचित, खंडित और द्वैतवादी हो गई है। 'कविता के नये प्रतिमान' में नामवर सिंह ने डॉ. नगेन्द्र के समग्र काव्य-बोध पर व्यंग्य करते हुए कहा है कि जहाँ अज्ञेय और नीरज एक साथ जगह पा सकते हों, वह हृदय निस्संदेह बहुत विशाल कहा जाएगा। औरों के लिए जो असंगति है, उसी को रसात्मक बोध में विरोधों का सामंजस्य कहा जाता है। निश्चय ही नवगीत को उपेक्षित कर कविता को नीरस बौद्धिक व्यापार बनाने में नामवर सिंह का बड़ा योगदान है। इससे कविता लोक मानस से दूर होती 'चली गई और अकादमिक बहसों में सिमट गई। **कविता भावों का निवेश है, विचारों का उपनिवेश नहीं।** पता नहीं प्रगतिवादियों को रस से इतनी एलर्जी क्यों है ? जबकि द्राक्षा रस तो काफी महिमामंडित है। गोस्वामी तुलसीदास जी समन्वय चेतना के प्रतिमान हैं। रामविलास जी की भारतीय आत्मा इस बात से व्यथित है कि नई पीढ़ी में पारंपरिक कलाओं के प्रति ज्यादा आकर्षण नहीं रहा। ले-देकर भरतनाट्यम् और कत्थक तथा ओडिसी जैसे कुछ शास्त्रीय नृत्य ही हैं, जिनकी ओर लोगों का थोड़ा सा आकर्षण बचा है। वह भी इस लिए कि इन्हें विदेशों से मान्यता मिल जाती है। विदेशी पूँजी और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रभाव से देश को मुक्त कराने के लिए वे बेचैन दिखते हैं। क्योंकि वे भूमंडलीकरण के नकारात्मक प्रभाव से अवगत हैं। हमें उन बहुराष्ट्रीय निगमों की अनुचित शर्तें भी माननी पड़ती हैं। इस परिघटना से राष्ट्र-राज्य की संप्रभुता की अक्षुण्णता प्रश्नांकित होती है। प्रकाश मनु को दिए गए एक साक्षात्कार में वे गाँधी जी को अपने महादेश के विभाजन के लिए जिम्मेदार ठहराते हैं। सन् 1946 में जब नाविक विद्रोह और क्रांतिकारी आंदोलन का उभार था, तब गाँधी जी ने जयप्रकाश नारायण और अरुणा आसफ अली के विरोध के बावजूद आंदोलन को स्थगित करने और अंग्रेजों के द्वारा गठित संविधान सभा में सहयोग करने का आह्वान करके भारी भूल की। अंग्रेजों ने ऐसी चाल चली कि देश दो टुकड़ों में विभक्त हो गया। यहाँ सवाल हिंसा और अहिंसा का नहीं था। सवाल अंग्रेजों का साथ देने और न देने का था और यहाँ गाँधी जी चूक गए। गौरतलब है कि रामविलास जी गाँधी जी के प्रति बहुत आस्थावान हैं लेकिन भारतीय हितों पर आघात पहुँचाने वाले कारकों की शिनाख्त बहुत शिद्दत से करते हैं। इस प्रकार एक गम्भीर आलोचक और युग-चिन्तक के रूप में रामविलास शर्मा का ऐतिहासिक अवदान अविस्मरणीय है। वे समग्र जीवन बोध के महान् अध्वर्यु हैं।

–कन्नौज, मो. 98396 11435

आलेख- दिनकर जयंती पर विशेष

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर

डॉ. राकेश रंजन

बीसवीं शताब्दी का चौथा दशक द्वितीय विश्वयुद्ध के आरम्भ का समय था। संपूर्ण विश्व में भाँति-भाँति की प्रतिक्रियाओं और उथल-पुथल की प्रधानता थी। भारत में राजनैतिक-सामाजिक क्षेत्र में अनेक आन्दोलन गतिशील थे। वास्तव में छायावादोत्तर काल छायावाद का संध्याकाल था और प्रगतिवाद का उदयकाल था। छायावाद-युग (1918-1936) की वायवीयता, सूक्ष्मता, सांकेतिकता और लाक्षणिकता का लोप हो रहा था। अब जीवंत समाज का कटु यथार्थ अपनी ओर आकर्षित करने लगा था। राजनैतिक-सामाजिक परिस्थितियों के फलस्वरूप राष्ट्रीयता और देश-प्रेम की भावना बलवती हो उठी थी। यही भाव एक ओर जहाँ 'वाद' विशेष को स्वीकार कर प्रगतिवाद के रूप में जन्मा; वहीं दूसरी ओर वादमुक्त हो राष्ट्रीय काव्यधारा के रूप में विकसित हुआ। यह अलग बात है कि 'राष्ट्र वंदना' की परंपरा भारतेन्दु से होती हुई बढ़ती रही है। इसी कड़ी में मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्रा कुमारी चौहान के बाद भव्य गौरव से ओतप्रोत अतीत, अपनी पीड़ा से छटपटाता वर्तमान और स्वप्नों की सकारता के लिए कुलाँचे भरते हुए राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' का आगमन हिन्दी साहित्य में हुआ जो अंततः एक युगांतकारी घटना साबित हुई।

ओज और शौर्य के, आग और राग के, जवानी और पौरूष के प्रख्यात कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' छायावादोत्तर काव्य में अपनी अनूठी पहचान रखते हैं। इनके काव्य में स्वाधीनता की आग धधकती है। राष्ट्रीयता की गंगा बहती है। अन्याय और शोषण के प्रति विद्रोह की आवाज सुनाई पड़ती है। आमजन की वेदना दिखती है। तरूणाई और पौरूष का उत्साह दिखता है:

''प्यारे स्वदेश के हित अंगार माँगता हूँ
चढ़ती जवानियों का शृंगार माँगता हूँ। ''

(सामधेनी)

रामधारी सिंह 'दिनकर

राष्ट्रकवि 'दिनकर' का जन्म बेगूसराय जिले के सिमरिया नामक ग्राम में सामान्य कृषक परिवार में 23 सितंबर 1908 ई. को हुआ था। इनके पिता का नाम श्री रवि सिंह तथा माता का नाम श्रीमती मनरूप देवी था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा गाँव की पाठशाला में हुई। मोकामा घाट उच्च विद्यालय से मैट्रिक उत्तीर्ण करने के बाद पटना आए और पटना कॉलेज से स्नातक प्रतिष्ठा (इतिहास) में उत्तीर्णता प्राप्त की। अपने जिले के बरबीघा विद्यालय में प्रधानाध्यापक के रूप में एक वर्ष रहे। सन् 1934 ई. से 1943 ई. तक सब रजिस्ट्रार के पद पर रहे। 1943 ई. से 1950 ई. तक बिहार सरकार के प्रचार विभाग में राजपत्रित पदाधिकारी रहे। 1950 ई. से 1952 ई. तक मुजफ्फरपुर के लंगट सिंह महाविद्यालय में हिंदी विभागाध्यक्ष रहे। 1952 ई. से 1964 ई. तक राज्यसभा के सदस्य रहे। 1964 ई. से 1965 ई. तक भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति रहे। 1965 ई. में केन्द्रीय सरकार के हिंदी सलाहकार के पद पर नियुक्त हुए। 24 अप्रैल 1974 ई. में उनकी मृत्यु हो गयी।

दिनकर में प्रारंभ से ही लोक के प्रति निष्ठा, सामाजिक कर्तव्यप्रियता और जन साधारण के प्रति समर्पण का भाव मौजूद था। सरकारी सेवा करते हुए उन्होंने स्वदेश प्रेम की उत्कृष्ट रचनाएँ कीं। 'उर्वशी' महाकाव्य(?) पर इनको 1972 ई. में ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ। भारत सरकार ने इनकी साहित्यिक सेवा के लिए पद्मभूषण से अलंकृत किया। भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर ने इन्हें डी.लिट. की मानद उपाधि दी।

दिनकर के साहित्यिक व्यक्तित्व में अद्भुत विविधता है। इनके काव्य में ओजस्विता है तो गद्य में प्रांजलता है। इनकी रचनाओं में दो धाराएँ स्पष्ट दिखती है-एक भारतीय संस्कृति का ओजस्वी गान और दूसरा राष्ट्रीयता का का सहज प्रसार।

'दिनकर' की प्रमुख कृतियाँ निम्नलिखित हैं-

काव्य- 'प्राणभंग', 'रेणुका', हुंकार, रसवंती, द्वन्द्वगीत, कुरुक्षेत्र, सामधेनी, धूपछाँह, बापू, इतिहास के आँसू, मिर्च का मजा, रश्मिरथी, दिल्ली, नीम के पत्ते, नीलकुसुम, सूरज का ब्याह, चक्रवाल, कविश्री, उर्वशी, परशुराम की प्रतीक्षा, कोयला और कवित्व, मृत्तितिलक, आत्मा की आँखें, दिनकर की सूक्तियाँ, हारे को हरिनाम, दिनकर के गीत, संचयिता, रश्मिलोक इत्यादि।

आलोचना और निबंध- 'मिट्टी की ओर', अर्द्धनारीश्वर, रेती के फूल, काव्य की भूमिका, पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण, वेणुवन, वटपीपल, शुद्ध कविता की खोज, साहित्यमुखी, राष्ट्रभाषा आन्दोलन और गाँधी जी, धर्म, नैतिकता और विज्ञान, चेतना की शिखा, विवाह की मुसीबतें इत्यादि।

ध्वनि नाटक- हे राम (1969)

सांस्कृतिक इतिहास- 'हमारी सांस्कृतिक एकता', 'संस्कृति के चार अध्याय', भारत की सांस्कृतिक कहानी इत्यादि।

लघु कथा- उजली आग (1956)

यात्रा वृत्तांत और संस्मरण- देश-विदेश, मेरी यात्राएँ, लोकदेव नेहरू, दिनकर की डायरी, संस्मरण और श्रद्धांजलि इत्यादि।

इन्होंने अपने काव्य में राष्ट्रीय भावनाओं के ओजस्वी गान के साथ शोषकों के प्रति रोष और शोषितों के प्रति सहानुभूति दिखायी है। कवि का आक्रोश द्रष्टव्य है-

''श्वानों को मिलता दूध वस्त्र, भूखे बच्चे अकुलाते हैं,
माँ की हड्डी से चिपक, ठिठुर जाड़े की रात बिताते हैं।''
''हटो व्योम के मेघ पंथ से, स्वर्ग लूटने हम आते हैं,
दूध-दूध ओ वत्स तुम्हारा, दूध खोजने हम जाते हैं।''

दिनकर का काव्य अग्निस्नात है। उसमें वाणी का ओज है, उबाल है। 'हिमालय' कविता में दिनकर ने नवयुवकों को गुलामी की जंजीर तोड़ फेंकने के लिए ललकारा था-

''ले अँगराई उठ, हिले धरा, कर निज विराट स्वर में निनाद।
तू शैलराट्! हुंकार भरे, फट जाय कुहा, भागे प्रमाद।।
तू मौन त्याग कर सिंहनाद, रे तपी! आज तप का न काल,
नवयुग शंखध्वनि जग रही, तू जाग, जाग मेरे विशाल!''
(रेणुका)

तब युवकों का एक वर्ग महात्मा गाँधी की अहिंसा में विश्वास नहीं करता था। इसी भावना को अभिव्यंजित करते हुए उन्होंने लिखा है।

''रे रोक युद्धिष्ठिर को न यहाँ, जाने दे उनको स्वर्ग धीर!
पर फिरा हमें गांडीव गदा, लौटा दे अर्जुन भीम वीर।''

(रेणुका)

देशभक्ति में प्रेम, त्याग और बलिदान की भावना सन्निहित होती है। आत्मोत्सर्ग की उत्कट भावना अग्रांकित पंक्तियों में देखी जा सकती है-

''यह झंडा जिसको मुर्दे की मुट्ठी जकड़ रही है,
छिन न जाये, इस भय से अब भी कस कर पकड़ रही है।
थामो इसे शपथ लो, बलि का कोई क्रम न रूकेगा,
चाहे जो हो जाये, मगर, यह झंडा नहीं झुकेगा।''
इस झण्डे में शान चमकती है मरने वालों की,
भीमकाय पर्वत से मुट्ठी भर लड़ने वालों की।

(सामधेनी)

दिनकर ने महायुद्ध के कारणों, समस्याओं, युद्ध की अनिवार्यता-आवश्यकता इत्यादि पर विचार करते हुए युद्ध दर्शन का प्रबंध काव्य 'कुरूक्षेत्र' की रचना की है जिसका प्रतिपाद्य युद्ध और शांति है। दिनकर की मान्यता है कि समाज में तब तक शांति की स्थापना नहीं होगी जब तक समतामूलक वर्गहीन समाज की स्थापना न हो। दिनकर ने कहा है-

''शांति नहीं तब तक जब तक
सुख-भाग न नर का सम हो।
नहीं किसी को बहुत अधिक हो,
नहीं किसी को कम हो।।''(कुरुक्षेत्र)

'कुरूक्षेत्र' दिनकर का ऐसा काव्य है जिसमें दिनकर का विचारक रूप चरमावस्था पर पहुँचा है। जहाँ एक ओर उन्होंने युद्ध-प्रवृत्ति की भर्त्सना की है-

''लड़ना उसे पड़ता मगर
औ' जीतने के बाद भी
रणभूमि में वह देखता है
सत्य को रोता हुआ।'' (कुरुक्षेत्र)

वहीं दूसरी ओर वह हिंसा की अनिवार्यता पर बल देता है-

''क्षमा शोभती उस भुजंग को
जिसके पास गरल हो,
उसको क्या ? जो दन्तहीन
विषरहित विनीत सरल हो।'' (कुरुक्षेत्र)

इतना ही नहीं, 'कुरुक्षेत्र' के षष्ठ सर्ग में कवि ने मानव मात्र को संदेश दिया है कि भौतिक उन्नति के मार्ग में चलते हुए मानवता को नहीं भूलनी चाहिए। आज मनुष्य प्रकृति पर विजय प्राप्त करने

के लिए प्राकृतिक उपादानों को नियंत्रित करता हुआ अंतरिक्ष के रहस्योद्घाटन में निमग्न है, लेकिन भौतिक उन्नति हमारा साधन है, साध्य नहीं। दिनकर स्पष्ट चेतावनी देते है-

''सावधान मनुष्य! यदि विज्ञान है तलवार,
तो इसे दे फेंक तज कर मोह स्मृति के पार।
हो चुका है सिद्ध, है तू शिशु अभी नादान,
फूल काँटों की तुझे कुछ भी नहीं पहचान।
खेल सकता तू नहीं ले हाथ में तलवार,
काट लेगा अंग, तीखी है बड़ी यह धार। '' (कुरुक्षेत्र)

दिनकर की स्वातंत्र्योत्तर रचनाओं में विशेष रूप से तीन रचनाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है- 'रश्मिरथी', 'नीलकुसुम' और 'परशुराम की प्रतीक्षा'। 'रश्मिरथी' में उपेक्षित वर्ग का प्रतिनिधित्व करनेवाला कर्ण इतिहास में अपनी अलग पहचान बनाता है।

''तेजस्वी सम्मान खोजते नहीं, गोत्र बतला के,
पाते जग में प्रशस्ति अपना करतब दिखला के।
हीन मूल की ओर देख, जग गलत कहे या ठीक,
वीर खींच कर ही रहते हैं इतिहासों में लीक।। ''

(रश्मिरथी)

'नील कुसुम' तो दिनकर के सौंदर्यान्वेषण का श्रेष्ठ काव्य है जिसमें ज्ञेय सौंदर्य का आराधन है। इनमें कुछ ऐसी कविताएँ भी हैं जिनमें दिनकर ने भारतीय जनतंत्र का अभिनंदन तेजस्वी ढंग से किया है।

''हुंकारों से महलों की नींव उखड़ जाती
साँसों के बल से ताज हवा में उड़ता है
जनता की रोके राह, समय में ताब कहाँ,
वह जिधर चाहती, काल उधर ही मुड़ता है। ''

(नील कुसुम)

दिनकर के 'लोकदेव नेहरू' की आत्ममुग्ध नीति के दुष्परिणाम स्वरूप सन् 1962 में चीन के बर्बरतापूर्ण आक्रमण ने भारतीय जनता को झकझोर दिया। इतना बड़ा विश्वासघात और कूटनीतिज्ञ असफलता को देख बड़े-बड़े राजनेता और विचारक हक्के-बक्के रह गये। दिनकर ने इस आक्रमण की प्रतिक्रिया 'परशुराम की प्रतीक्षा' के रूप में दी। इस रचना के माध्यम से कवि ने संदेश देना चाहा है कि जब देश पर संकट के बादल मंडरा रहे हों। आम जन असुरक्षा महसूस कर रहे हों। स्वतंत्रता संकट में हो तो ऐसे समय में परशुराम जैसे योद्धा और विजेता की आवश्यकता देश को होती है। इसी क्रम में कवि क्षमा, तप और अहिंसा जैसी भावनाओं की जगह बाहुबल, वीरता और बलिदान को महत्त्व देने की बात करते हैं।

''स्वर में पावक यदि नहीं, वृथा वंदन है,
वीरता नहीं, तो सभी विनय क्रंदन है। ''

(परशुराम की प्रतीक्षा)

'उर्वशी' में कवि ने जिस काम और अध्यात्म में संतुलन स्थापित करने की चेष्टा की है, वह उनके गंभीर चिन्तनशील व्यक्तित्व को प्रस्तुत करता है।

वीर रस के इस कवि के हृदय में प्रेम की वीणा झंकृत हुई है। 'उर्वशी' के पुरूरवा सनातन नर के प्रतीक हैं और उर्वशी सनातन नारी की प्रतीक है। पुरूरवा द्वंद्व में है, वह भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही स्तरों पर पूर्णता प्राप्त करना चाहते हैं, जो असंभव है। इसके विपरीत 'उर्वशी' भोग्या नारी के रूप में अभिव्यंजित है और उसका प्रेम विशुद्ध ऐन्द्रिक भोग का प्रतीक है।

भले ही दिनकर कवि रूप में प्रख्यात हो, पर उन्होंने गद्य में भी उत्कृष्ट रचनाएँ दी हैं। वे एक सफल निबंधकार, आलोचक, समीक्षक, संस्कृति व्याख्याता हैं। 'संस्कृति के चार अध्याय' उनकी लेखकीय प्रतिभा का विस्फोट है जिसमें भारत के सांस्कृतिक इतिहास पर प्रकाश डाला गया है। 'शुद्ध कविता की खोज' उनकी आलोचकीय प्रतिभा का व्यावहारिक निदर्शन है।

रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य का वस्तु सौंदर्य जितना श्रेष्ठ है, उतना ही कला पक्ष समुन्नत और गौरवपूर्ण। इनकी भाषा शुद्ध खड़ी बोली है जो विषयानुकूल और पात्रानुकूल है। भाषिक सहजता, सरलता, प्रवााहमयता और सजीवता वर्तमान है जिसमें तत्सम, तद्भव और देशज सभी प्रकार के शब्दों का सुष्ठु प्रयोग है। उनके काव्य में ओज गुण की प्रधानता है, पर विषयानुकूल माधुर्य और प्रसाद गुण भी देखने को मिलते हैं। काव्य में वक्रता और विदग्धता उत्पन्न करने तथा सूक्ष्म, जटिल भावों की तीव्र अभिव्यक्ति करने के लिए मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग दिनकर ने बड़े सलीके और सबल ढ़ंग से किया है। दिनकर के काव्य में अलंकार स्वाभाविक रूप में आये हैं। छंद योजना में दिनकर ने परंपरा और नवीनता दोनों को ग्रहण किया है। विशेषतः उन्होंने मात्रिक छंदो का प्रयोग किया है। इनकी काव्य-शैली प्रबंध और मुक्तक दोनों की रही है।

हिन्दी विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
एम.डी.डी.एम. कॉलेज, मुजफ्फरपुर, बिहार-842002
मो.: 7488392077, 9435413575
ईमेलः rakeshranjancritic@gmail.com

समीक्षा

ओस सी लड़की (काव्य संग्रह)

निर्मला डोसी

'नाम में क्या रखा है' यह जुमला अक्सर सुनते हैं। यह सच होता तो 'ओस सी लड़की' ने उसी वक्त पढ़ने को बाध्य किया अपने नाम ही के कारण। ओस का जीवन भले छोटा हो उसके सौंदर्य की स्मृति कालजयी होती है। फूलों की चिकनी मखमली सतह पर ठहरी सच्चे मोती की आब लिए एक ओस की बूंद हो या हरे धानी पत्तों पर ठिठकी ढेर सारी हीरे की कणियों जैसी उसकी बिंदुमाला हो, समूची कायनात को पावन सध:स्नात सौंदर्य से मंडित कर देने में सक्षम है।

संध्या यादव के काव्य संग्रह का इससे उपयुक्त दूसरा नाम हो नहीं सकता था। उनकी हर कविता में सरपट मन में उतर जाने की कूवत है।

बहुत पहले उनकी एक कविता 'चिनिया के पापा' सुनी थी उन्हीं के मुख से और वह कविता आज तक जेहन में अटकी हुई है।

बहरहाल इस संग्रह पर बात करें तो जब वे कहती हैं– 'मैं जहां भी जाती हूँ।

मेरे सिर और कंधे के बीच
सीधी गर्दन क्यों आ जाती है ?
यह है आत्मविश्वास की गूंज और फिर कहती हैं –

'विश्वास' खाने में नमक जितना ही होना चाहिए,
वरना ज़िदगी का स्वाद बिगड़ जाता है।

विश्वास के टूटने के पश्चात नमक के स्वाद का अनुभव होता है 'पाठ्यक्रम' कविता में उनका प्राचार्य का व्यक्तित्व उभर आया कि :-

कभी नहीं पढ़ाऊंगी अपने बच्चों को,
जितनी चादर हो उतना ही पैर फैलाना चाहिए।

कविता की अंतिम पंक्तियों में गुरु का दायित्व नहीं भूलीं वे-

अपने सिर पर चादर रखने के लिए,
किसी के पैरों को नंगा मत करना।

कवयित्री, संध्या यादव

बिगड़ता पर्यावरण और प्रकृति दोनों ही उनकी कविताओं में खूब फबें हैं।

महुआ शीशम कठफोड़वा चील बाज
बच्चों को गूगल पर दिखाती हूँ।
और लज्जित होती हूँ।
जब बेटी पूछती हैं
मम्मा हमारे लिए
कुछ नहीं बचाया आप लोगों ने।

'मत बचाओ बेटियां', 'बिसराई गई बेटियां', स्लोगन,आदि कविताएं भारतीय परिवार के बेटियों के स्थान और उनकी नियति को प्रतिबिंबित करती मार्मिक कविताएं हैं जो कलेजे में कसक पैदा करती है

औरत के समूचे वजूद का बखान करती कविता 'गेहूं की बाली और गुलाब' की यह पंक्तियां -

उसकी खामोशी का बांध जिस दिन टूटेगा
उसी दिन सृष्टि के रेगिस्तान में
गेहूं की बाली और लाल गुलाब
एक साथ हंसेगा

यह कविता जरा सा चौंकाती है –

रेगिस्तान में गेहूं की बाली और लाल गुलाब ... ?
संभवत ऐसे बिंब अब तक नहीं गढे होंगे किसी ने।

'तलाश' कविता की हर पंक्ति पर हजारों बातें कही जा सकती है। महीन और नई सोच की कविता है यह और है दो टूक निष्कर्ष कि-

प्रेम कभी अपवित्र नहीं होता
प्रेम में जीना सीखना होगा लड़कियों को।

माँ पर हर रचनाकार की कलम चली है। संध्या की 'माँ' कहती है

मैंने अखबार पढ़ना छोड़ दिया है
दो लड़कियों की माँ हूँ मैं

रात दिन खौफनाक खबरें उगलने वाले सूचना तंत्रों से दहशत होनी लाजमी है।

'रिश्ता' कविता में चार शब्दों में सच कह दिया कि–

जो दिल को सुकून दे बस वही असली रिश्ते

संध्या अपने कहन में बहुत ज्यादा शब्द खर्च किए बिना भी सटीक बात कहने का हुनर जानती हैं। 'नक्काशी' में यह कमाल फिर दिखता है-

नाखूनों से नक्काशी यूं तो वक्त ने की है
मेरे चेहरे पर तुम चाहो तो
उसे उम्र का तकाजा कह सकते हो।

'रिश्ते' कविता में खारी किंतु खरी कहीं कि

जान से जाने वाला हर बार 'स्वर्गवासी' नहीं होता
'मुक्त भी हो गया' कहलाता है

स्त्री विमर्श लेखिका का क्षेत्र है नहीं किंतु उन्होंने जीवन के हर कोने से कविता को उठाया है। हर बार, बार- बार स्त्री उनकी कविता में आ जाती है। वे सायास नहीं करती होंगी ऐसा, अनायास हो जाता होगा। एक स्त्री से ज्यादा दूसरी स्त्री की पीड़ा को कौन समझ सकता है।

' बिन ब्याही लड़की की त्रासदी' 'राखी' 'छोड़ी छुड़ाई औरतें' 'कसम' 'छम्मक छल्लो' 'ओस सी लड़की' 'सिंड्रेला' 'सुनो बबुनी' 'पांचवी लड़की' 'छोड़ी हुई औरत' 'जतन' 'चुनौती' 'दो औरतें रखने वाले मर्द' 'गलत पता' 'बीमार लड़की' 'दुनिया बदलेगी' इत्यादि

संग्रह की कविताएं हैं जिनमें लेखिका ने अलग-अलग बिंदु से औरत के रोजमर्रा के जीवन के दर्द को परखा पड़ताला है। अनूठे शब्द चुनें हैं और तब कविता गूंथी है। गौरतलब यह कि कहीं भी एकरसता या दोहराव नहीं हैं। हर पंक्ति को नई तरह से कहने की अर्हता ने लेखिका के लेखन को समृद्ध किया है।

ऐसा भी नहीं है की संध्या ने सिर्फ खरी और खारी ही बातें कहीं है उनके कहन में कच्ची उम्र के प्रेम की मासूमियत भी दिखती है-

उसने अब भी संभाल कर रखे हैं
अपनी अलमारी में मेरे फूल कढ़े रुमाल

या फिर-

अपनी बेकारी के दिनों में लोहे का
एक कड़ा खरीद दिया था उसके जन्मदिन पर
आज भी सोने के कंगन के साथ पहन लेती हूँ
पूछने पर सबसे 'मंदिर का चढ़ावा है'
हंसते हुए यही कहती हूँ

एक और-

नई नौकरी मिली पहली पगार मिलने पर
उपहार में शिल्पा बिंदी का पैकेट लाया था
लाल बिंदी लगा 'दुनिया की सबसे सुंदर लड़की'
कहा था उसने

संध्या की कविताओं की एक खूबी है जहां-तहां आंचलिक शब्दों का प्रयोग उनकी कविताओं में सोने में सुगंध भर देता है। उनका प्रेम को 'पिरेम' कहना मुग्ध कर देता है।

'दुख' कविता में दूसरों के दुख को देखने की उदारता दिखती है, वह गरीब माँ जो जवान बेटियों की अराजकता देखने को संतप्त है।

वह दुख जो किसान के बच्चों के भूखे रह जाने का है गरीबी का मारा बेटा जो बीमार माँ को

अस्पताल में मरते देखने को विवश है
अदालतों के अनाचार से त्रस्त बूढ़ा
जो हार कर आत्महत्या कर लेता है

बाल मजदूरों का दुख, आतंकवाद का दुख, इनके सामने अपना दुख कुछ नहीं है और अंत में बड़ी पते की बात कहती हैं कि

सुख से अघाए दुखी लोग जानते ही नहीं कि
वास्तव में दुख होता क्या है

'संस्कार' कविता में एक लाइन में पूरी कविता का सार संक्षेप है-

पता नहीं खामोशी आदत थी मजबूरी या संस्कार
मरने से पहले मरने की मजबूरी को दर्ज करना जरूरी था

विषय वैविध्यता संध्या के काव्य संग्रह को निखारती है।

'भूत' कविता अंधविश्वास के खिलाफ आवाज है तो 'जादू' कविता में जादू खोलती है कि किस तरह एक नदी बह जाने की चाहत में मरुस्थल में बदलती जा रही है।

अपनी कविताओं में संध्या कमाल के बिंब लेकर आती हैं। 'पांचवी लड़की' कविता में लड़की ने ख्वाहिश भी की तो क्या कि

मुझे बनाना है गेहूं के साथ छितराई गई राई
जो उग आती है यूं ही बिना प्रयास के

'आम आदमी' कविता में औरत चारों तरफ से चाक चौबंद है और वाकिफ है राजनीति के चौंचलो से भी तभी कहती हैं कि-

नहीं बहलाते अब मुझे तुम्हारे कथन

मेरे भरे हुए टैक्स की कीमत मुझे चाहिए
मरना तो बाद में होगा
पहले मुझे इंसानों का जीवन चाहिए

'बंगाली टोटका' व्याह संस्कार की कड़वी सच्चाई उजागर करती स्त्री जीवन की सच्ची व्यथा- कथा है। जो देखा है बचपन से आस-पास वह सभी बातें कलम से तो उतरेगी ही। भले आलोचक उन पर नारीवादी का टैग लगाएँ। इस कविता की किस पंक्ति को कोट् करूं... आखर आखर में दर्द पिरोया है औरत की त्रासदी का।

' पुस्तक दिवस' व्यंग है-
जब तक किताबों में सांस लेते रहेंगे सूखे गुलाब
तब तक धरती बची रहेगी

इस कविता में मिथकीय घटना के माध्यम से बात कही गई है।

मुझे अक्सर वही दिखा जो लोगों ने अनदेखा कर दिया और इसलिए मुझे आँख नहीं तड़पती हुई मछली दिखी

'क्वॉरेंटाइन' में बबुनी उंहा हाथ मति रखो, बहुत दुखता है

'छोड़ी हुई औरत' अलग तेवर की कविता है

काश सीता ने इंकार कर दिया होता
अग्नि परीक्षा देने से
काश कृष्ण ने साड़ी की लंबाई बढ़ाने की
जगह रख दिया होता हाथ में हथियार
काश कि दुनिया की तमाम औरतों ने
छोड़ दिए जाने के बाद
हर पल मरने की बजाय
हर पल जीने की सोची होती
क्योंकि छोड़े जाने से कहीं ज्यादा
अपमानजनक होता है
छोड़े जाने की पीड़ा के एवज में
छोड़े जाने का चक्रवृद्धि ब्याज भरना
और छोड़ी गई औरत उम्र भर
जिंदा रहने तक भर्ती है यह ब्याज

' मनके मनके हजार' मन का भी एक मन होता है यह पंक्ति लेखिका के दार्शनिक भाव को दर्शाती है। 'जतन' कविता में लेखिका पाठक को वर्षों पहले वाले गांव घर में बेटी के ब्याह वाले आंगन में ले जाकर खड़ा कर देती है यही तो शब्दों का तिलस्म है कि पल में आँखों के सामने बिना किसी तामझाम के चित्र खड़ा किया जा सके।

'आकार' कविता में औरत के आत्म स्वीकार की हूंकार है

तेरे एहसान की मोहताज नहीं मैं
खुद को रौदुंगी पीटूंगी
चाक पर धर कर खुद को
टेढ़ा मेढ़ा ही सही
एक आकार दूंगी
बेनाम जन्मी थी
बेरूप मरूंगी

'चुनौती' में
सपनों की बैसाखी पकड़ एवरेस्ट चढ़ना जानती हूं
' सफर'में

रूह और जिस्म की कशमकश जहां पुरुष जिस्म की गलियों में भटक रहा है सदियों से

और वह रूह की मुंडेर पर इंतजार कर रही है
उसके आने का सदियों से

कम शब्दों में कितनी गहरी बात कह गई हैं कवियत्री

'रोटी खानी है तो बिल्लियों को लड़ा कर रखो' 'दो औरतें रखने वाले मर्द' की पंक्तियां हैं।

समाज में व्याप्त अंधविश्वास को बयान करती कविता है 'बीमार लड़की' जिसमें डॉक्टर वैद्य के पास उसे ले जाना जरूरी नहीं होता। बाबा, फकीर, ओझा के पाखंड की शिकार सहमी लड़की फिर कभी बीमार होने पर भी बीमारी का जिक्र भूलकर भी नहीं करती।

'परदेसी' गंवई परिवेश की कविता इसमें पुरुष घर के सुख से वंचित दूसरे प्रदेश में रोजी-रोटी कमाने गया है और घर गृहस्थी के छोटे-छोटे सुख को तरस रहा है। यह हमारे देश के निम्न मध्यमवर्ग के पुरुषों की त्रासदी है।

'दुनिया बदलेगी' अंतिम कविता है जिसमें अज्ञानी समाज का जिक्र है इतिहास गवाह है देख कर अनदेखा करने का समाजशास्त्र अलिखित रहा इसलिए बांचा नहीं गया।

'ओस सी लड़की' काव्य संग्रह नई संभावनाएं जगाता है। लेखिका के पास कविता कहने का सहज सरल सा जो सलीका है वहीं उनकी कविताओं को लोकप्रिय बनाता है। कथ्य में संजीदगी है जो कथन को विश्वसनीय बनाती है।

–नवी मुम्बई, मो. 9322496620

समीक्षा

तेरा पत्र मिला

डॉ. सन्तोष गोयल

फ्रांसिस बेकन ने पत्रों का महत्त्व बताते हुए लिखा है कि 'मेरे विचार से विद्वज्जनों के पत्र, मनुष्य के समस्त कथनों से श्रेष्ठ हैं ।' किसी भी भाषा के पत्र उसके साहित्य की बहुमूल्य थाती होते हैं । हम प्रसिद्ध चित्रकार वॉन गॉग के सम्बंध में जानते हैं कि उसका एकमात्र सहारा पत्र-लेखन था। अपने छोटे भाई को लिखे सहस्रों पत्रों में उसने अपने आत्मसंघर्ष, उत्पीड़न और आशा-आकांक्षाओं की कहानी को लिपिबद्ध कर दिया । उसके चित्रों में हम उसकी आत्मा के सौंदर्य को देखते हैं, लेकिन उसके पत्रों में उसके व्यक्तित्व को । प्रसिद्ध अमेरिकी संत एमर्सन के पत्रों का संकलन लगभग 32 हज़ार पृष्ठों और पांच खण्डों में है।

पत्रों की बात को याद करने का सबसे बड़ा कारण है कि मेरे हाथ में प्रसिद्ध जानी-मानी साहित्यकार लेखक "कुसुम अंसल जी का हाल में ही आया हुआ नया उपन्यास" तेरा पत्र मिला "नाम से मुझे कल ही प्राप्त हुआ।

पत्र लिखने की विधा पर अचानक ध्यान गया और मुझे लगा की पत्र विधा का इस्तेमाल करके क्या कोई साहित्यिक पुस्तक लिखी जा सकती हैं

कुसुम जी ने भी शायद इसी प्रश्न से प्रेरित होकर इस तरह के पत्रों का प्रयोग कर अपना यह उपन्यास लिखा होगा।

यह उपन्यास उन्होंने कोविद के समय पर लिखा जो मानव के लिए अत्यंत कष्ट दायक भी और दुखद समय था।

अपने घर में ही बंद रहकर घुटा हुआ जीवन जीना कितना कठिन होता है यह सभी लोगों ने अनुभव किया होगा । लेखक द्वारा अपने अकेलेपन को लेखन कर्म के साथ जोड़ लेता है। परिणाम आपके सामने है।

"तेरा पत्र मिला" उपन्यास आज की तेज गति वाली जीवन शैली की बात करता है । ईमेल, व्हाट्सएप, मोबाइल पर लिखे हुए वन लाइनर संदेश उनकी चर्चा करते हुए कुसुम अंसल जी कहती हैं कि हमारी जिंदगी से पत्रों की महत्ता नकारात्मक होती जा रही है हम केवल सूचना भर रह गए हैं पत्रों में जो झनझनाहट, सनसनाहट, रोमाँस होता था वह समस्त खत्म होता जा रहा है। भविष्य की इस स्थिति से अपने आने आगामी पीढ़ी की चिंता करते हुए एक साहित्यकार ऐसे में अपना कर्तव्य निभाने की दृष्टि से उसे विधि को जीवित रखने के लिए एक उपन्यास रच के पाठक के सम्मुख रखता है और उसे बताता है पत्र शैली कितनी महत्वपूर्ण है। उसे सूचना शैली नहीं बनना चाहिए। यह तो रही कुसुम जी के द्वारा रचित इस उपन्यास की बात।

कुसुम अंसल

अब मैं उपन्यास की कहानी पर बात करू तो पत्र शैली में लिखे हुआ यह उपन्यास एक लड़की की कहानी कहता है। लडकी कौन है,उसका क्या अस्तित्व ?

हम कितना भी आगे बढ़ गए हो; कितना भी विज्ञान से जुड़ गए हैं औद्योगीकरण के प्रभाव को रोक नहीं सके नहीं सकते उसके प्रभाव से हम भी एक रोबोट में तब्दील होते चले जा रहे हैं और रोबोट का तात्पर्य है संवेदनाहीन कोई व्यक्ति। यदि संवेदना ही नहीं बाकी बचेगी तो हम इंसान कैसे बने रहेंगे और यदि हमें इंसानियत ही नहीं बचेगी तो यह सृष्टि किस प्रकार बच पाएगी। यही प्रश्न है जो कुसुम जी को सालता है दुखी करता है तथा वह एक लड़की की बात करते हुए पूरे समाज की ही बात करती हैं।

गौरिका, जो अपने घर में अकेली संतान है, पर लड़की है, और लड़की क्या होती है; उसके होने का अर्थ क्या है ? वह माँ के लिए चाहे प्रिय पुत्री हो, उसके लिए चाहे वात्सल्य का प्रतीक हो और वह भी एक पुत्री होकर माँ की ममता में डूबती रहे पर पिता के लिए वह मात्र चीज़ है, एक वस्तु है जिसकी ना कोई इच्छा है ना कहने सुनने का अधिकार है, ना मन की बात कर सकने की ताकत। पिता का पितृ सत्तात्मक भाव उसे कुछ करने नहीं देता। पिता तो अपनी पितृ सत्ता में प्रसन्न है! अपनी ताकत में डूबा है, अपने अधिकार का प्रयोग करने में मस्त है। गौरिका की माँ की 10 वर्ष

की अवस्था में मृत्यु हो जाने पर पिता बेटी की चिंता ना करते हुए अपने लिए अपने अधिकार से दूसरी शादी कर लेता है और फिर बेटी से आशा करता है कि वह इस तरह जिए रहे जैसे वह सोचता है। 10 वर्ष की बच्ची कैसे तो अपनी ममातमयी माँ को भूलाकर दूसरी औरत को माँ कहना शुरू कर दे यह भी एक प्रश्न है। यही थी वह पहली चोट और दंश जो गौरिका को जख्मी करती है। पिता कहलाने वाला व्यक्ति केवल एक बात जानता है की अपनी बेटी की पढ़ाई और पढ़ाने का मतलब था उसे अनुशासन सिखाएँ साथ में कुछ-कुछ समझदारी भी। यह समझदारी का शब्द भी पिता के अनुकूल होना चाहिए। गौरिका को माँ की मृत्यु के पश्चात शिमला में लोरेटो कॉन्वेंट स्कूल में दाखिल करवा दिया गया जहां उसने अनुशासन से रहना भी सीख और स्वतंत्रता भी पाई।

17- 18 वर्ष की होने के पश्चात जब वह घर लौटी घर से मतलब पिता के घर लौटी तब उसकी माँ के साथ पुरानी तस्वीर सब हटा दी गई थी दीवार पर केवल कीलो के निशान बचे थे जिनसे तस्वीरें ठोकी गई थी यह भी एक दंश था जो गौरिका को महसूस हुआ।

पढ़ाई खत्म नहीं हुई...

अब पिता प्रेम प्रकाश चाहते थे कि वह घर गृहस्थी संभालने का कुछ-कुछ तरीका सीखे इसके लिए दिल्ली में "लेडी इरविन कॉलेज" सबसे अच्छा लगा क्योंकि उसमें घर की साज संभल यानी होम साइन्स की पढ़ाई होती थी। पिता का कुछ भी मानना रहा हो पर यही समय गौरिका के लिए बहुत अच्छा रहा। उसे उसके दो मित्र मिले रश्मि और सबीना जो उसके अंतरंग दोस्त हो गए और यह सारी कहानी सारा उपन्यास उन दो दोस्तों से पत्र व्यवहार करते हुए ही लिखा गया है। यही वह समय था जब गौरिका समझदार भी हुई, खुद को जानने भी लगी, आजादी का मतलब जानने लगी। पर अंत कुछ नहीं हुआ किसी शब्द के अर्थ जान लेना ही उसको समझ लेना नहीं होता।

गौरिका घर वापस पहुँची तो उसके विवाह की तैयारी होने लगी गोरीका को बोलने की या कुछ कहने की इजाजत तो थी ही नहीं अब भी वह कुछ नहीं बोल सकती थी पितृ सत्ता ऐसी ही होती है। निरंजन नाम के लड़के से उसका विवाह कर दिया गया यह जाने बिना के वह चाहती है या नहीं कुछ कहना चाह कर भी कह सके इसका उसे अधिकार ही नहीं था। वह मन से तैयार होकर कि वह पिता के इस इच्छा पर पूरी उतरेगी उस घर में चली जाती है जो उसके पिता की हवेली से भी बड़ा था नौकर चाकरो से भरा था सभी सुख सुविधाओं के साथ, किंतु वहां अधिकार गौरिका की सास का था क्योंकि ससुर तो व्हीलचेयर पर बैठे हुए बेचारे बने इधर-उधर देख भर सकते थे।

गौरिका को तभी अपने पति की बीमारी का पता चला पर वह चुप रही क्योंकि उसे यही हिदायत मिली थी।

तभी उसे अनुभव हुआ जैसे कुछ गलत काम उसके साथ किया जा रहा है उसे कोई दवाई दी जाती है उसे दवाई के साथ में बेहोश हो जाती है और रात के समय उसके बिस्तर पर उसके पति के अतिरिक्त कोई और व्यक्ति आकर के सोता है कई दिन तक ऐसा चलता रहा एक दिन अपनी बेहोशी से दुखी होकर गौरिका ने दवाई की गोली छुपा कर फेंक दी उ उसी दिन उसे जब होश आया तो उसने देखा कि निरंजन के घर के गुरु जी श्री रहील बाबा उसके साथ लेटे हुए हैं। पता चला कि वह गर्भवती है। वह समझ गई कि यह गर्भ किसका है अपने पिता के घर से आई हुई चंदा नाम की सहायक की सहायता ली और अपने पिता तक यह बात पहुंचाई। ऐसी स्थिति में पितृ सत्ता हिल गई। वह वही पिता नहीं रहे जो लड़की को कोई चीज समझते हो पता नहीं यह उनकी पितृ सत्ता पर हमला था या उन्हें बेटी नाम की गौरिका की चिंता हुई थी पर वह उन्हें लेने आ गए और यह कहते हुए भी के वह अपनी बेटी को यहां से छुड़वायेंगे यानी निरंजन से तलाक करवा देंगे यह थी दूसरी बड़ी घटना जिसकी शिकार हुई थी गौरिका।

इससे पूर्व शिमला से लौटने के पश्चात एक बार शिमला की दो-तीन मित्र उसके घर आ गई और वह कमरे में जाकर खाने-पीने मस्ती करने में व्यस्त हो गई। 17 -18 साल की बच्चियां मस्ती कर रही थी उन्होंने अपने कमरे में माँ का रखा हुआ रिकॉर्ड प्लेयर चला लिया उस पर गाने लगा लिए और उस पर धीरे-धीरे नाचने लगे।

गाना बज रहा था ' जब प्यार हुआ तो डरना क्या' तभी उसके पिता दरवाजा खोलकर अंदर आए और उसे खूब डाँट फटकार लगाने लगे। यही नहीं एक जोर का झन्नाटेदार थप्पड़ लगाकर कहा, " क्या तुम इतनी नीचे गिर गई हो कि आजकल अभी से प्यार की बात करती हो। यह कैसी दोस्त हैं तुम्हारी ?

अपने दोस्तों के सामने इतना अपमानित होकर गौरिका मानो जड़ हो गई इस अपमान से भी वह कभी उबर कर नहीं पाई।

सुहास नाम का एक लड़का उनके साथ कभी-कभी चित्रकारिता की बात किया करता था। चित्रकार बनना चाहता था। वह एक बहुत अमीर घर का बच्चा था इतना अमीर के उसे अपना घर एक सजा सजाया ड्राइंग रूम लगता था जिसको वह देख सकता है, सराह सकता है किंतु उसमें जी नहीं सकता, बैठ नहीं सकता, बैठकर अपनापन नहीं पा सकता। उसके लिए यह सब धन संपत्ति दिखावटी थी। पिता से उसकी बिल्कुल नहीं बनती थी अतः घर को छोड़कर पेरिस चला गया। पिता ने तो इसलिए भेजा था कि वह वहां जाकर पढेगा पर उसने वहां जाकर चित्रकला सीखनी शुरू कर दी। सुहास की बहन रमोला पूरी की पूरी धन संपत्ति का दिखावा, बनावटी ज़िंदगी से जुड़ी हुई थी। एक दिन मजाक मजाक

में जब रश्मि और सबीना ने सुहास और और गौरिका के विवाह की बात की तो रमोला ने जिस हिकारत से गौरिका का नाम लिया वह सबको दंशित कर गया उसके पश्चात दोनो का संबंध कुछ रहते हुए भी नहीं बचा। सुहास पेरिस चला गया गौरिका का विवाह हो गया और वह अपने दुखद स्थिति में जीवित रहती रही ना चाहते हुए भी इंसान जब बहुत तरह से चोटिल होता है दंशित होता है तो छोटी-छोटी बातें भी उसे और अधिक चोट पहुंचती है तब वह अपने भीतर ही जीवित रहता है, बाहर निकलना ही नहीं चाहता उसे लगता है बाहर सभी लोग उसे बार-बार चोट पहुंचाते है और वह दंश और नहीं झेल सकता।

यही दशा होती है जिसे हम डिप्रेशन कहते हैं गौरिका इसी डिप्रेशन में रहने लगी थी।

ऐसे में उसकी मित्र प्रिय रश्मि, मित्र सबीना उसके सहायक चंदा तो उसके साथ थीं ही, पिता का भी व्यवहार कुछ-कुछ बदंल गया था यही वह लोग थे जो उसे डिप्रेशन से निकाल सकते थे कुछ तो उन लोगों की सहायता कुछ स्वयं की भी, मन की ताकत भी उसे बाहर निकालना चाहती थी।

आगे की कथा मे तीनों मित्र तथा पिता साथ में चंदा सभी गौरिका को शब्द हीनता से बाहर निकाल कर शब्द में लाना चाहते हैं।

शब्द का मतलब वह बोले अपनी बात कहे लोगों से मिले तथा उनकी बात सुने और इस प्रकार बातचीत द्वारा वह अपने डिप्रेशन से बाहर आए। डिप्रेशन है ही ऐसी बीमारी जिसे समझने के लिए बहुत करीबी प्रिय, जान पहचान वाले, गहराई से व्यक्ति को समझने वाले लोगों का साथ होना जरूरी होता है तभी कोई इंसान डिप्रेशन से बाहर निकल पाता है गौरिका स्वयं भी स्थिति से बाहर निकलना चाहती थी तो कुल मिलाकर रश्मि और सबीना ञ तथा पिता प्रेम प्रकाश जी का बदला हुआ रूप सहायक बनता है और धीरे-धीरे गौरिका बाहर की हवा में सांस लेने लगती है। एक बार पहली बार ली हुई सांसों की गिनती फिर धीरे-धीरे बड़ी संख्याएं बनने लगी। पिता ने उसे दो कमरे का फ्लैट ले दिया ताकि वह उसमें अपने तरीके से अपनी इच्छा से रह सके। गौरिका के लिए घर सिर्फ फ्लैट नहीं होता। वह उसे घर में बदलना चाहती है जो उसके अनुसार एक दृष्टिकोण होता है, दीवारों की संरचना को देखना जिसमें सपने होते हैं; एक कैनवस होता है जिस पर हम भविष्य की परिभाषाएं लिखते हैं।

सचमुच कुसुम जी का यह कथन घर की परिभाषा के लिए बेहद प्रभावित करता है।

गौरिका भी अपने फ्लैट को अपने तरीके से सजाते हुए प्रसन्न होती है तथा डिप्रेशन से बाहर निकलती है वह एक दिन मार्केट जाती है बहुत सारी किताबें खरीद कर लाती है यह भी एक परिवर्तन का हिस्सा था और परिवर्तन जीवंत होता है।

रश्मि के सुझाव पर तथा सबीना के मान लेने पर वे लोग गौरिका को एक साइकैटरिस्ट के पास ले जाने की योजना बनाते हैं सबीना ले भी जाती है डॉक्टर का जो चित्रण किया है वह शुद्ध भारतीय शैली की स्थिति को चित्रित करता है यद्यपि उसका पैसे लेना ₹ 21000 पाठक को चिंतित भी करता है इधर साइकैटरिस्ट के पास जाना उधर पिता द्वारा गौरिका को अपने ऑफिस में स्थान देना 10 से 4 तक की ड्यूटी देने के लिए तथा उनके बिजनेस में जुड़ने के लिए उसको कार्यरत करना एक अच्छे तरीके की थेरेपी थी जो उसे डिप्रेशन से बाहर निकाल सकती थी।

सबीना के हाथ गौरिका द्वारा रचित डायरी के कुछ पन्नों पर जो कुछ लिखा हुआ था उससे पता चलता है कि वह किस प्रकार अपने लोगों के उसके लिए बनाए गए कानून से थकी हुई थी, असंतुष्ट थी, उसका व्यक्तित्व इसी असंतुष्टि से निर्मित था।

हम जो सोचते हैं जो कार्यक्रम बनाते हैं आवश्यक नहीं कि वह पूरा भी कर पाए परिणाम रश्मि जिसने 25 तारीख तक आने की टिकट बुक कराई थी अचानक शूटिंग करते समय गिर पड़ी और उसका फ्रैक्चर हो गया चिट्ठी पत्री ही एकमात्र साथी रह गया।

फिर एक दिन सबीना अपनी पुत्री के साथ तथा गौरिका को लेकर नलिनी दामोदर का नृत्य देखने गई इस भी गोरी के मन की गाँठ को खोलने का काम किया तब उसने समझा कि यह सारी विधाएं संगीत, साहित्य, नृत्य नाटक या चित्र सभी जीवन के महत्वपूर्ण अंग है इनमें एक हृदय भेदी चुभीलापन है जो हमें सजग करता है।

उधर रश्मि अपने पैर के टूट जाने की वजह से काफी दिक्कत में थी यह बात उसे ज्यादा दुखी कर रही थी कि वह गौरिका से मिलने जा नहीं पा रही है, पर उसने अपनी चिट्ठी से देखा कि कैसे उसे इस दिन नृत्य देखकर जब वह बाहर निकली तो उन्हें सुहास मिल गया। सुहास का मिलन मानो जीवन का मिलना था, परस्पर फोन नंबर का आदान-प्रदान हुआ, सुहास की चित्र प्रदर्शनी देखने में दिलचस्पी दिखाई गौरिका ने और इस प्रकार उन दोनों की बातचीत भी शुरू हो गई यह एक बहुत अच्छा इत्तेफाक था।

कुसुम जी पूजा स्थलों, बड़े-बड़े मंदिरों में होने वाले गुनाह का सफल चित्रण करती चलती है। वह समाज के प्रति बेहद सजग है इसलिए किसी न किसी पत्र के माध्यम से इन सब का भेद खोलती हैं हालांकि इसी में गौरिका के घर के सामने वाले फ्लैट में रहने वाली विनती के घर का चित्रण अत्यंत खुशनुमा तथा सफाई से किया हुआ, गुरु ग्रंथ साहिब की पंक्तियों का बहुत अच्छा प्रभाव दिखाते हुए सिखों की सफाई, ईमानदारी, सेवा,अपने गुरु ग्रंथ साहब के प्रति भक्ति भाव श्रद्धा सबका बहुत सफल चित्रण किया है।

दर्द की परत जितनी तेजी से दिल के ऊपर चढ़ जाती है उतनी तेजी से उतरती नहीं है पर धीरे-धीरे गौरिका सबीना का साथ! काउंसलर के कारण और कल्चरल प्रोग्राम्स के कारण तथा सुहास के साथ चित्र निर्माण का सहारा लेकर धीरे-धीरे नार्मल होने लगी।

स्वयं को अभिव्यक्त करना बहुत आवश्यक है, अभिव्यक्ति के बिना व्यक्ति अपूर्ण है। सुहास से मिलने के पश्चात वह चित्रकला से प्रभावित हुई उस की शिक्षा प्राप्त करने लगी और उसमें इतना डूब गई कि वह स्वयं एक अच्छी चित्रकार बन गई इस प्रकार गौरिका की दुख भरी कथा समाप्त तो नहीं हुई लेकिन बैकग्राउंड में चली गई गौरिका वर्तमान में जीने लगी और जीने का यही सबसे सफल और अच्छा तरीका है पर प्राकृतिक दुर्घटनाओं का भी किसी को आभास नहीं होता।

अब यह कहना तो कठिन है कि यह प्राकृतिक घटना थी कोविद नाम की बीमारी सारे संसार में फैली थी और इस कदर फैली थी की सब लोग घर में अकेले रह गए थे और बीमारी के डर से भयभीत थे इसी समय पर गौरिका भी इस बीमारी से ग्रसित हो गई। उसे अस्पताल जाना पड़ा अस्पताल में वह बिल्कुल अकेली थी कोई वहां जा नहीं सकता था कोई उसको देखभाल नहीं कर सकता था, यहां तक की चंदा भी उसके पास नहीं पहुंच सकती थी। रश्मि सबीना या सुहास उसके पिता कोई भी उसके पास नहीं जा सकते थे। वहीं अस्पताल में अकेले दम 35 वर्ष की आयु में उसने दम तोड़ दिया।

यह पूरी कहानी गौरिका के माध्यम से एक अकेली पड गयी लडकी की कथा तो कहती ही है साथ ही लड़की होने का दुख भी व्यक्त करती है।

इस पितृसतात्मक समाज में महिला की स्थिति क्या है ? वह एक वस्तु है, एक मकान, जायदाद, अपने तरीके से जीने का उसे कोई हक नहीं है। उसे वही करना चाहिए जो परिवार के मुखिया कहते हों।

यही नहीं इन पत्रों के माध्यम से कुसुम जी ने समाज की अनेक स्थितियों को काफी खुले ढंग से व्यक्त किया है अच्छाइयाँ और बुराइयाँ सभी का चित्रण खुले मन से सटीक भाषा में आपके सामने आता है और आप स्तब्ध खड़े रहते हैं कि उन्हें कितना ज्ञान है कितना सजग और सचेत है लेखिका है वे कि वह एक-एक कोने की एक-एक हिस्से की बात खुलकर कर पाती हैं। रश्मि और सबीना जैसे मित्रों का होना, पत्र लेखन उसमें व्यक्त भाव सभी यह समझाते हैं कि जीवन में दो-तीन अच्छे दोस्तों का होना कितना आवश्यक है जो आपको गहराई से जानते हैं समझते हैं और समझाते हैं कि पिता को भी बाद में अच्छा पिता बना करके लेखिका ने पितृ समाज को एक संदेश दिया है जो आज के समय में बहुत जरूरी है यह भी लेखिका ने बता दिया है की सब कुछ होने पर भी यहां इंसान अंत में अकेला ही रह जाता है यहां तक की सुहास भी अपने घर में अकेला है उसके पिता भी अमीर बहुत, धनवान बहुत, बड़े फैक्ट्री के मालिक, दो बच्चों के होते हुए भी अकेले रह जाते हैं यह भी एक संदेश है कि संसार में न पैसा जरूरी है, ना ताकत जरूरी है, जरूरी है तो इंसानियत यानी ह्यूमैनिटी। इंसानियत का मतलब है। हम इंसान है अगर हम इंसान नहीं है और ह्यूमैनिटी नहीं जानते तो सब बेकार है। एक बहुत खूबसूरती से "वेल रिटन" यह उपन्यास है। कुछ पंक्तियाँ उल्लेखनीय है:-

"परछाई बनकर जीना छोड़ दें।"

लिओ टॉलस्टॉय की पत्नी की डायरी के कुछ अंश प्रभावित करते हैं

आई एम ए सोर्स ऑफ़ सेटिस्फेक्शन टू
हिम, ए नर्स, ए पीस का फर्नीचर ए वुमन नथिंग एल्स।
हर शहर हर देश में स्त्री की स्थिति का समय क्यों नहीं बदलता।
"एक किताब की तरह हूं मैं,,,,,,,, हम
कितनी भी पुरानी हो जाएँ
तो भी उसके अल्फाज नहीं बदलेंगे
कभी याद आए तो पन्ने पलट कर देख लेना"
"घर एक दृष्टिकोण होता है"

"हर इंसान के पास कुछ क्षमताएं होती हैं कुछ भीतरी और कुछ बाहरी। भीतरी क्षमता में उसे अनुभव स्मृतियों को अपने भीतर ही रखें। बाहर उन्हें प्रकट मत होने दीजिए यही जीवन जीने का तरीका है।"

"ए स्लेव लिवड इन मी हू हैस टु ओबे द लॉस विच हेस बीन मेड ओनली फॉर मी"

"Desire is the root cause of your sorrow. "

"Every child is a painter.: Pablo piccaso.

" अजीब सा एक साइकिक रिलेशनशिप हमारे बीच पनप गया, हमारी मित्रता भी उसकी चित्रात्मकता की एक लैंडस्केप जैसी ही बनती जा रही थी। :

"जीवन अपनी शर्तों पर ही जीना चाहिए तभी हमें एक अनिर्वचनीय या अजीब सा संतोष मिलेगा जो भीतर की आंतरिकता का एक सार्थक सुख देता है।"

और भी अनेक।

पत्र शैली बहुत प्रभावशाली बन पाई है क्योंकि प्रत्येक पात्र अपनी पहचान बन जाता है। भाषा की बात करें तो कुसुम जी के पास शब्द भंडार तो बहुत बड़ा है उन्हे शब्दों का सही जगह पर सही प्रयोग करना आता है। वह जानी-मानी लेखिका है जो अनेक वर्षों से लिख रही है उनकी भाषा शैली मंजी हुई हैं, परिपक्व है। ऐसे उपन्यास के लिए उनको बहुत-बहुत बधाई और मुझे पढ़ने देने के लिए उनका ढेर सा आभार।

डॉ. सन्तोष गोयल, गुरुग्राम

–कुसुम अंसल, 98100 16006

समीक्षा

“बिखरते पारिवारिक संबंधों की संवेदनशील कहानी अमीरन की ज़ुबानी”

डॉ. दुर्गा सिन्हा ‘ उदार ’

आवरण पृष्ठ पर घूरती, चमकती, झांकती दो आँखें, निस्तेज कुछ डरी-डरी, घबराई-घबराई सी, पुस्तक के मज़मून को लिफ़ाफ़े के बाहर से ही समझने समझाने का माद्दा रखती हैं। बहुत कुछ कहने और अनुमान लगाने के लिए प्रेरित करती हैं। जो देखता है, वही इन आँखों के पीछे छुपे राज़ को जानने के लिए इनके पीछे दौड़ता रहता है। मैं भी दौड़ रही हूँ यह जानने के लिए कि यह कौन हैं, क्यों दौड़ रही हैं। दौड़ नहीं रही वरन् भाग रही हैं। किससे पीछा छुड़ाने के लिए भाग रही हैं ? कौन है जो उन्हें डरा रहा है और उनका डर हम सबको डरा रहा है ? क्या यह डर हमारे मन में, हमारे घर में भी छुपा बैठा है ?

कितने प्रश्नों से प्रारम्भ होती है ‘ अमीरन ‘ की जीवन यात्रा। जीवन अथाह सागर है। हर व्यक्ति का व्यक्तिगत सागर जिसका थाह पाना उतना ही कठिन है जितना ईश्वर को जानने का प्रयास। इन्सान ईश्वर की कृति,उसका अंश ही तो है जानना,समझना, परिभाषित करना कठिन ही तो होगा। इसे भी ‘ नेति’ -‘ नेति’ से ही समझना पड़ेगा।

क्या ऐसा है ? क्या ऐसा नहीं तो क्या ऐसा है ? यह भी नहीं तो फिर क्या है ? कैसा है ?क्या कुछ नहीं ?इस कुछ नहीं के पीछे भी तो बहुत कुछ छिपा रखा है जो मन के गहनतम सागर अवचेतन से भी परे अचेतन मन में छिपा बैठा है। उसे कैसे जानोगे, कैसे पहचानोगे ?

वह तो छद्मवेशी है, अपने को जो दिखाता है वह तो,वह होता ही नहीं है।

चलिए देखते हैं यह अमीरन हमें क्या बताती है। पूछते हैं। इसकी कहानी इसकी ही ज़ुबानी सीधे-सीधे चल कर तो पकड़ नहीं पाई हाँ उल्टी चाल ने जल्दी से कामयाब कर दिया। आज दुनिया के साथ रेस में भागने की चुनौती उसे दौड़ा रही थी। ज़िन्दगी से होड़ ? वह भी जीतने के लिए। यह कैसी स्पर्धा ?

एकता अमित व्यास

अमीरन ने चौंकाने वाली बात बताई। सोती नहीं। नींद कम, दिमाग़ ख़ाली। अपने ही घर में डर लगता है। नींद की कमी से हादसे हुए हैं। स्वाभाविक है।

“डर विचारों की दिशा ही बदल देता है। स्नेह, स्वार्थ पूर्ण दिखने लगता है। अपने हर व्यवहार पर यही अहसास होता है कि मैं ही पागल थी औरों के लिए मरती थी। ”

कितनी सहजता से व्यक्ति के मनोभावों को अभिव्यक्ति दे डाली है ?, एकता जी आपने। ऐसा ही तो होता है। सबने मेरा फ़ायदा उठाया, यही लगने लगता है। जब हम किसी के अन्दर की बात जानना चाहते हैं तो जिज्ञासा चरम पर पहुँच जाती है। जाने क्यों हमें रस आने लगता है।

घर में बिना बुलाए आई मुसीबत सच में जीना मुश्किल तो कर देती है।

“ पुरुष दिखावे में जल्द आ जाया करता है “

मनोविज्ञान की ज्ञाता बन कर एकता जी आपने पुरुष विमर्श की बड़ी सटीक व्याख्या की है। सच है। अधिकांश पुरुष भोले होते हैं। ज्ञानवान होने का इस बात से कुछ भी लेना-देना नहीं। उन्हें पता भी नहीं चलता कि उनका असली परिवार टूट रहा होता है। कोई भी महिला घर में घुस कर क्या चोरी कर ले जाएगी पतियों को कहाँ पता चलता है। पत्नियाँ परेशान ज़रूर रहती हैं। उन्हें ही पता चलता है कि डाका कहाँ पड़ने वाला है। धीरे-धीरे घटनाएँ विपरीत होती चली जाती हैं और सब कुछ सामने खोते हुए - जाते हुए, देखते रहने पर भी कुछ उपाय नहीं सूझता।

“ जो हम देखना नहीं चाहते उसे स्वीकार भी नहीं करते “बहुत सही वाक्य है।

ये इंसानी फ़ितरत है और हक़ीक़त है। कैसे चाह सकते हैं ऐसी अनहोनी को जो अपनी ही ज़िन्दगी को तबाह करने के लिए हक़ीक़त बनता जा रहा होता है।

"जीवन एक रोलर कोस्टर राइड है।"

सच कहा आपने एकता जी। जीवन जब कुछ शांति पूर्ण चलता दिख रहा होता है तो उसी समय कुछ अप्रत्याशित हलचल की ओर जीवन की गति मुड़ जाती है। क्यों और कब, पता भी नहीं चलता।

हर घटना का बखूबी विस्तार वजह के साथ, परिस्थिति को समझने में बहुत सहायता करती है।

आपने उपन्यास ही नहीं लिखा वरन् आपने बहुत सी नसीहतें भी इसके माध्यम से दे डाली हैं।

जैसे —-

*अपने बच्चे को कभी भी अपने से दूर न करें। इससे स्वमान, स्वाभिमान और आत्मविश्वास घटने की सम्भावना अधिक होगी। सबसे पहले तो बच्चा असुरक्षित महसूस करेगा। असुरक्षा की स्थिति में वह जो कुछ सीखेगा वह आधा -अधूरा ही होगा।

अपने बच्चे की ज़िम्मेदारी किसी और के जिम्मे न सौंपें। चाहे कितना भी बुद्धिमान क्यों न हो, आप जितना अच्छी तरह अपने बच्चे को सिखा सकते हैं, उतना अच्छा कोई और कभी भी नहीं सिखा सकता।

किसी बात के लिए कभी भी देर नहीं हुई होती है। जब कमर कस लें,

सुधार तब से ही शुरू हो जाता है। संकल्प लेने की देरी है।

किसी अन्य को अपने परिवार की गतिविधि में इतना दखल न करने दें कि परिवार आपके हाथ से निकल जाए।

स्वयं पर भी ध्यान दें। अपनी शक्ति को कम मत आँकें।

लोगों की हर बात पर अक्षरशः ध्यान न दें,

लेकिन ध्यान से सुनें अवश्य। सत्य तलाशने की कोशिश करें।

औरत ही औरत की दुश्मन होती है। जैसे यहाँ इस केस में दिव्या अमीरन की ज़िन्दगी में ज़हर घोल रही थी और शांत जीवन में हलचल मचा रही थी।

ज़िन्दगी फ़िल्म नहीं कि एक सुखद अंत से सब कुछ ठीक हो जाता। वह तो सतत संघर्ष की प्रक्रिया है।

स्त्री सब कुछ सह सकती है किन्तु अपने वैवाहिक रिश्ते को दरकते नहीं देख सकती।

जीवन में कुछ अपना, अपने नाम का अवश्य होना चाहिए,जिस पर केवल अपना अधिकार हो। जो कुछ अपना है उसकी जानकारी भी होनी चाहिए। अनभिज्ञ रहना भी नुक़सानदेह होता है।

अपनी लड़ाई हमें ख़ुद लड़नी होती है। दूसरा कोई कुछ भी मदद नहीं कर सकता।

श्रद्धा और विश्वास का केन्द्र बिन्दु है गुरू। ईश्वर तक पहुँचने का माध्यम भी। बिन कहे, सब कुछ समझ लेता है और बिना निर्देश दिए समस्या का हल भी समझा देता है। मन में शांति भर देता है। संघर्ष की शक्ति और विजय का हौसला भी देता है। अदृश्य शक्ति की भाँति मदद रूप बनते हैं ये आस्था के प्रतीक , हमारे गुरू।

यदि आप ठान लें तो पूरी कायनात आपकी मदद के लिए आगे आ जाती है। इसमें संदेह नहीं।

रोना कमज़ोरी नहीं। ताकत की परीक्षा है। रोने की भी एक सीमा होती है। एक सीमा के बाद दुःख आंसुओं में बह जाते हैं। आप मुक़ाबला करने के लिए तैयार हो जाते हैं।

कोई भी तकलीफ़ आपको लम्बे समय तक परेशान नहीं कर सकती। तकलीफ़ें आएँगी,

आपको मज़बूत- परिपक्व बना कर चली जाएँगी।

एक मज़बूत इंसान ही दूसरे को संबल दे सकता है। किन्तु एक माँ टूटने के बाद भी अपने बच्चे के लिए बेहद सशक्त बन सुरक्षा चक्र बन सकती है।

लेखिका का हिन्दी प्रेम भी स्पष्ट छलकता है हर वाक्य में, जब वे यह कहती हैं कि "अंग्रेज़ी में कुतर्क भी सर्वगुण सम्पन्नता कहलाती है। मातृभाषा में ज्ञानवर्धक सटीक आपकी बातों के बाद भी आप अज्ञानी ही कहलाएँगे।"

नए माहौल में भी पुरानी घटनाएँ सहज नहीं होने देतीं। शायद दुनिया के नब्बे प्रतिशत जोड़े आदर्श पति-पत्नी होने का ढोंग करते हैं। बखूबी निभा भी लेते हैं। निभाते रहते हैं। स्वीकारने का मन कर जाए हर किसी का, सम्भवतः।

भय से भयानक, भय की कल्पना, जब जीवन में हावी हो जाती है तब आँखों से नींद ग़ायब हो जाती है।

जब संबंधों में दूरी आने लगती है, तब मज़ाक भी चुभने लगता है।

अवसाद के पलों में जितना हो सके प्रकृति के निकट रहने की कोशिश करें। बाग-बगीचे, पार्क में नित नूतन खिलने वाले रंग-बिरंगे पौधे मन को ख़ुशी देते हैं। जीवंतता का अहसास कराते हैं।

प्रकृति हमारी पहली संरक्षक होती है।

प्रेम पा लेने का नाम नहीं। प्रेम को जीना ही असली प्रेम है।

" हो सके तो मुझे मना लो "

यह वाक्य हर किसी के लिए एक संदेश है, एक सीख है, कि परस्पर प्रतिष्ठा का प्रश्न न उठाएँ झुकने का माद्दा भी रखें। कोई बुराई नहीं। आपस में एक दूसरे को मना लेने में ही सुख है।

उपन्यास की पूर्णाहुति भी बड़े ही अनोखे ढंग की है। जिन संवादों, घटनाओं और बगीचे में सुबह की सैर के समय दौड़ते हुए, गुनगुनाते-गुनगुनाते शुरू हुई थी उसी तरह से दौड़ते -भागते, गुनगुनाते ही समाप्त भी हुई। पता नहीं यह समस्या समाधान का हल मिलने की ख़ुशी का गीत था या अवसाद से मुक्ति पाने का। जो कुछ भी था सुखद लग रहा था। अवसाद से बाहर निकलने में सहायक बने सभी साथी मित्रों का धन्यवाद।

मैं व्यक्तिगत रूप से हर साथी, मित्र, सहेली, संबंधी और निकटतम संबंध रखने वाले उन सभी से गुज़ारिश करना चाहूँगी कि अपने अपनों को कुछ समय तक यदि याद न भी कर सकें व्यस्तता के चलते तो भी जब याद आए तुरंत सम्पर्क करें, बात करें, हाल-चाल लें, कहीं मदद की ज़रूरत लगे तो मदद का हाथ ज़रूर बढ़ाएँ। इसके लिए कभी भी देर नहीं हुई होती है। दूसरों के लिए मदद में बढ़ाए गए हाथ सबसे पहले स्वयं आपको, आत्म रक्षा हेतु समर्थ बनाते हैं। हम सबल बनते हैं, फिर सबल बना पाते हैं।

एक-एक शब्द गहन संवेदनाओं से भरपूर है। हर मन को उद्वेलित करती, सीख देती, सहारा देती, निराशा में आशा के दीप जलाती,

मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद,

सराहनीय अभिव्यक्ति।

रोचक, पठनीय एवं संग्रहणीय उपन्यास। हर व्यक्ति कहीं न कहीं, कभी न कभी, किन्हीं समस्याओं से जूझता, संघर्ष करता, जीता रहता है। सभी को ख़ुद समाधान का रास्ता तलाशने का उपाय दर्शाती अनुपम कृति।

बहुत-बहुत बधाई एकता जी !

आपके उपन्यास ने बाँध कर रख दिया।

मन के मनोविज्ञान को बड़े मन से सँवारा है आपने।

अंदर की सारी गुत्थियाँ बाहर निकाल कर मन को शांत भी कर दिया। अच्छा संदेश भी दिया है कि हर कोई कैसे अपने को स्वस्थ रख सकता है।

सृजनात्मकता, लेखन

या पेंटिंग या कुछ भी जिसमें आपका मन लगे,

बस शुरू कर दीजिए। वही स्वास्थ्यवर्धक है।

लोकार्पण के दिन ही, 2 जून, 2024, दिल्ली में जानकारी मिली कि पहला संस्करण तो बिक गया दूसरे संस्करण की तैयारी है।

आपको और सभ्या प्रकाशन को कोटिशः बधाई। यह पाठकों की पहली पसंद बनेगी। मुझे पूरा विश्वास है। इस अनुपम कृति की जितनी प्रशंसा की जाए कम है।

बहुत-बहुत बधाई एवं हार्दिक शुभकामनाएँ।

पुस्तक : " अमीरन"
प्रकाशन वर्ष - 2024–25
मूल्य - 400/-
प्रकाशक - सभ्या प्रकाशन, नई दिल्ली
मो. 9910497972
लेखिका - एकता अमित व्यास

समीक्षक - डॉ. दुर्गा सिन्हा 'उदार'
पूर्व व्याख्याता
मनोविज्ञान विभाग, बी.एच.यू., वाराणसी
मनोवैज्ञानिक सलाहकार
साहित्य एवं समाज सेवी
durga.a.sinha@gmail.com

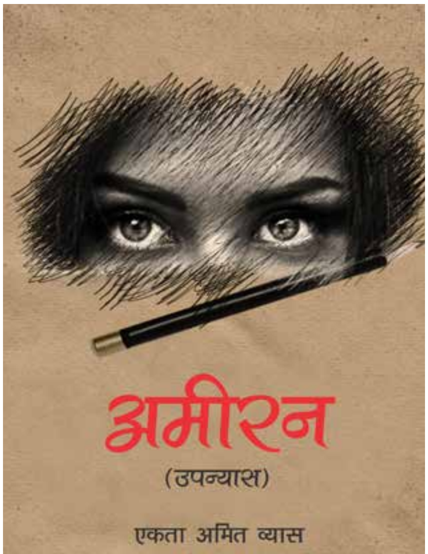

डॉ. रेनू यादव
असिस्टेंट प्रोफेसर
भारतीय भाषा एवं साहित्य विभाग
गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय
ग्रेटर नोएडा – 201312
ई-मेल - renuyadav0584@gmail.com

लेखक- मन्नू भंडारी
कहानी - अकेली

अकेली

अकेली स्त्री की लाचारी और आत्मविश्वास दोनों ही समाज के लिए भय का कारण होता है।

अकेली स्त्री अपने आप में उतनी अकेली नहीं होती जितनी कि वह समाज की हेय एवं उपेक्षित दृष्टि से होती है। वह जितनी हेय और उपेक्षा की दृष्टि से देखी जाती है उतना ही वह प्रेम, अपनापन एवं सम्मान की चाह में अपने आपको योग्य सिद्द करने की कोशिश करती है। किंतु सत्य यही है इस आधुनिक युग में प्रगतिशील समाज के व्यापकता में भी वह संकीर्ण दृष्टि की शिकार रहती है। आज भी उसके लिए प्रेम, अपनापन एवं सम्मान किसी पुरूष की छत्रछाया के बिना एक यूटोपिया ही है।

समय बदल गया है पर 20वीं शती के आखिरी दशक में मन्नू भंडारी द्वारा रचित कहानी 'अकेली' 21 शती में भी उतनी ही प्रासंगिक है। सोमा बुआ पूरी तरह से परित्यक्त नहीं हैं, क्योंकि उनके पति साल में एक बार एक माह के लिए घर लौटकर आते हैं। आधी परित्यक्त स्त्री की स्थिति पूर्णतः परित्यक्त तथा विधवा स्त्री से भी दयनीय होती है। पति का होकर भी न होने का बोध तथा समाज में होने न होने के दिखावे के बीच स्त्री को अंदर ही अंदर तोड़ देता है। सामाजिक रिश्तों में वह न तो पूरी तरह अपनाई जाती है और न ही छोड़ी जा सकती है। पति के नाम का मोहर उसे समाज में रिश्ते होने का बोध करवाता है किंतु रिश्तेदारों की हेयदृष्टि उसे रिश्तों से बरगला कर अपमानबोध से भर देता है। समाज द्वारा प्रदत्त मानसिक प्रताड़ना उसके अपने अकेलेपन की प्रताड़ना बन जाती है। सोमा बुआ अपनापन की चाह में पड़ोसियों के घर बिन बुलाये चली जाती हैं और उनके घर का सारा काम संभाल लेती हैं। किंतु सामने वाले की नज़र में अपनापन और सम्मान की दृष्टि से वंचित रह जाती है।

आज के समय में असंख्य अनपढ़, साक्षर, नौकरीपेशा स्त्रियाँ हैं जो आधी या पूर्णतः परित्यक्त हैं और तलवार की धार पर जीवन व्यतीत कर रही हैं। अनपढ़, साक्षर जो दूसरों के ऊपर निर्भर हैं उनकी स्थिति सोमा बुआ के समान है। हालांकि आत्मनिर्भर स्त्रियाँ अकेले रहने का फैसला भी ले रही हैं किंतु उनकी स्थिति भी लगातार अग्निपरीक्षा देती सीता की तरह होती है।

प्रायः अकेली स्त्री का रोना, असहायपन और बेचारगी लोगों के लिए सहानुभूति और हास्य दोनों ही कारण बनता है किंतु उसका खुलकर हँसना किसी को नहीं सुहाता। संदेह की नोक पर उसका चरित्र सबसे अच्छा एवं सहज बॉल होता है जिसे कभी भी किसी के पाले में फेंका जा सकता है। बंद कमरे में अपनापन एवं सम्मान देने वाले सभ्य पुरूष सार्वजनिक स्तर पर नजरें बचाकर और भी सभ्य बनने का दंभ भरते हैं तो सुहागिन स्त्रियों की ऊर्जा अकेली स्त्रियों से अपने पति को पवित्र बचा लेने की कोशिश में खपत हो जाती है। अकेली स्त्री न तो किसी शादीशुदा, अविवाहित या एकल पुरूष की दोस्त हो सकती है और न ही पूर्णतः स्वच्छंद होने का दंभ पाल सकती

है। (कुछेक अपवाद भी है, पूँजीपति या उच्चवर्ग में अकेली स्त्री के अकेलेपन का दंश मध्यमवर्ग की अपेक्षा अत्यंत अल्प रूप में झेलना पड़ता है। जिसकी पहली सुरक्षा की गांरटी आर्थिक स्वतंत्रता है।) आज की स्त्रियाँ भी सोमा बुआ की तरह अपने बेटे की धरोहर अँगूठी को बेहद दुख के साथ बेचकर अपनों के समारोह में शामिल होना चाहती हैं किंतु सोमा बुआ की तरह अनबुलाई घर के कहीं किसी कोने पर अकेली खड़ी रह जाती हैं।

सवाल यह है कि अकेली स्त्री को देखने संबंधी नज़रिए में वर्चस्ववादी मानसिकता में क्या स्त्री-विमर्श से अब भी कोई परिवर्तन आया है अथवा मात्र मंचों, पुस्तकों या बहसों में है ? पितृसत्ता में स्त्री को पण्य होने के लिए कब तक अग्निपरीक्षा देनी पड़ेगी ? आधुनिक समय में प्रगतिवादी समाज क्या अब भी अपनी सोच और बनावटी मूल्यों में प्रगति कर पाया है ? स्त्रियों की सुरक्षा की गारंटी कब तक पुरूष के नाम के मोहर के साथ होती रहेगी तथा कब तक वह आजीवन किसी न किसी पुरूष के आधीन अपना जीवन बिताने के लिए विवश रहेगी ? सभ्य समाज की खोखली मानसिकता कब बदल पायेगी ? आदर्श एवं नैतिकता की आड़ में स्त्री कब तक ठगी जायेगी ?

सलिला

रंग बासंती

15

2010-2024

शिक्षा, साहित्य और सृजन की त्रिवेणी

कुमुद वर्मा

डायनेमिक डी.एम. है उनकी बेस्ट सेलर बुक

अहमदाबाद गुजरात निवासी कुमुद वर्मा साहित्य और शिक्षा के क्षेत्र में अपने विशिष्ट लेखन से एक अनूठी पहचान रखती है। आप अध्यापन और स्कूल प्रबंधन से निष्ठापूर्वक जुड़ी हुई है। आपने 26 वर्षों तक अहिंदी भाषी व्यक्तियों को निःशुल्क हिंदी पढ़ाने जैसा साहित्य सेवा का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। आपने हिंदी और गुजराती दोनों भाषाओं में अनुपम साहित्य सृजन किया है। कुशल अध्यापक कैसे बने?, श्रेष्ठ शिक्षक, अध्यापन का इंद्रधनुष जैसी कृतियां शिक्षा के क्षेत्र में अलख जगा रही है, वहीं बाल साहित्य की हम तो बच्चे हैं और भारत गौरव जैसी पुस्तकें आपकी बाल साहित्य के प्रति रुचि और अनुराग को प्रकट करती हैं।

विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में आपकी रचनाएं सतत प्रकाशित होती रहती हैं। अनेक साझा संकलनों में आपकी रचनाएं शामिल हुई है। एक जागरूक नारी अस्मिता एवं मधुर व्यवहार की धनी कुमुद को देश भर की अनेक संस्थाओं से 30 से अधिक मानद अलंकरण प्राप्त हो चुके हैं। उनमें सखी साहित्य परिवार, हिंदी लेखिका संघ भोपाल, पूर्वाशा हिंदी अकादमी असम, बाल साहित्य संस्थान अल्मोड़ा से प्राप्त गौरवपूर्ण सम्मान के साथ ही आपकी लिखी 'हम तो बच्चे हैं' पुस्तक को सलिला संस्था द्वारा 'सलिला साहित्य रत्न सम्मान' से विभूषित किया गया है।

- संपादक

डॉ. कुमद वर्मा

The Impact of Purposeful writing : Exploring Roles of 10 Authors Who Inspire Change.

The most powerful leaders of transformation: honoring vision resilience and impact across sectors

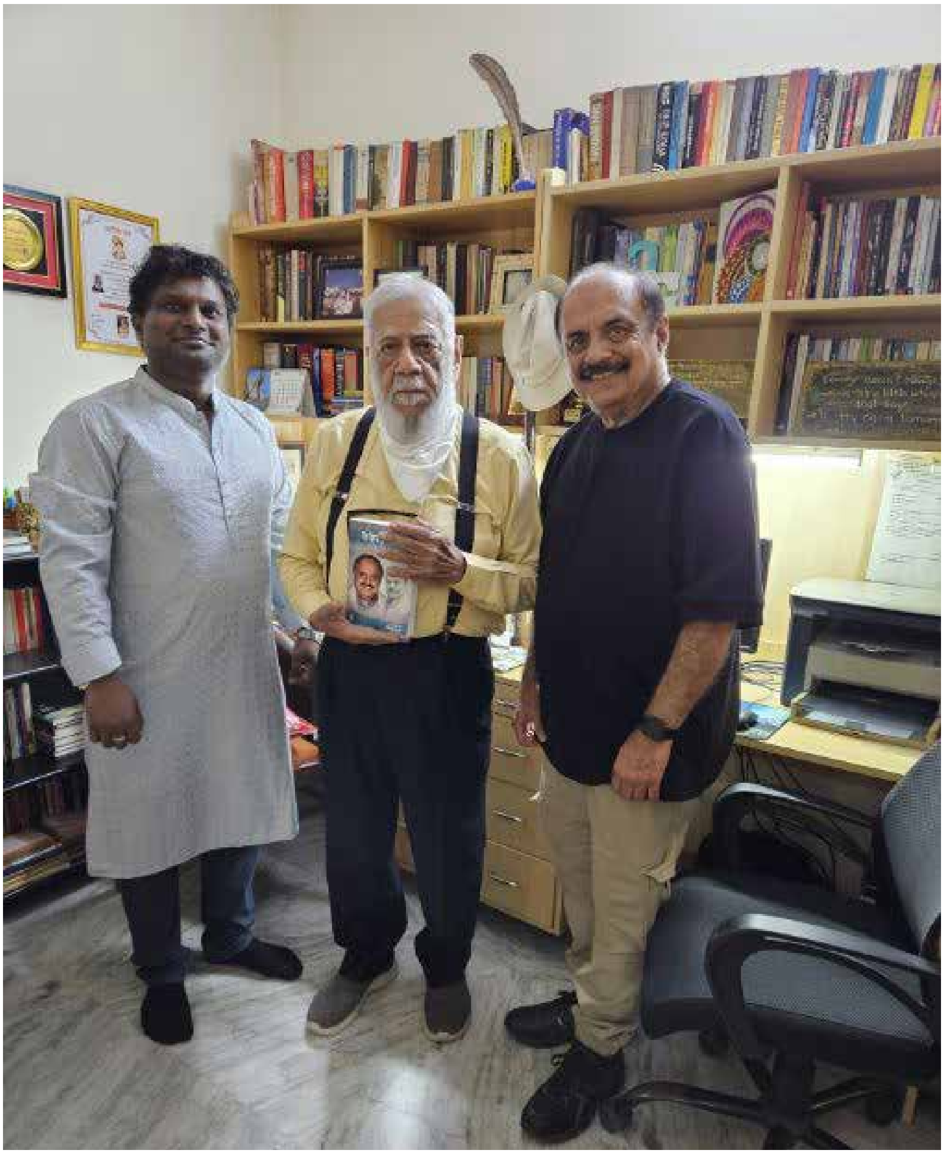

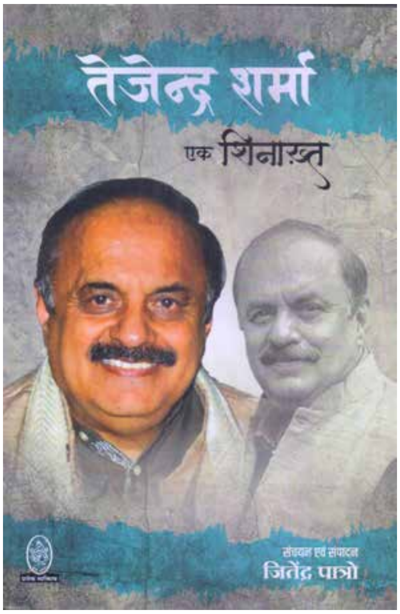

तेजेन्द्र शर्मा उनकी पुस्तक के संपादक जितेन्द्र पात्रो अभिनव इमरोज़ के कार्यालय में संपादक देवेन्द्र कुमार बहल के साथ

'साहित्य में घटते रुझान पर चिंता, किताब पढ़ने की आवश्यकता'

जासं, अलीगढ़: एएमयू की सांस्कृतिक संस्था आइडिया कम्युनिकेशंस, और उर्दू विभाग के तत्वावधान में लेखिका डा. कुसुम अंसल के उपन्यास 'तेरा पत्र मिला' का विमोचन किया गया। उन्हें प्रशस्ति पत्र और शाल भेंट कर सम्मानित किया गया। कार्यक्रम में साहित्य के क्षेत्र में घटते रुझान पर चिंता व्यक्त की गई। युवा पीढ़ी को किताबें पढ़ने के लिए प्रेरित किया गया।

एमिटी यूनिवर्सिटी के कुलपति प्रो. पीबी शर्मा ने कहा कि लेखक समाज का दर्पण नहीं, मार्गदर्शक है। टेक्नालाजी के युग में साहित्य को जिंदा रखना हम सब का कर्तव्य है। लेखिका कुसुम ने कहा कि गर्व है, एएमयू की छात्रा रही हूं। यहां की संस्कृति मेरे कलम ही नहीं, अपितु मेरे जीवन का हिस्सा है। उन्होंने अलीगढ़ नुमाइश पर कविता भी

लेखिका डा. कुसुम अंसल को सम्मानित करते अतिथि • सौ. एएमयू

सुनाई। लेखक व आइडिया के निदेशक आसिफ आजमी ने कहा कि साहित्य वही जीवित और प्रासंगिक रहता है जो मिट्टी और जीवन से जुड़ा होता है। आत्मा और अंतर्मन की पीढ़ियों का युग बीत चुका है। उन्होंने कहा कि कुसुम अंसल का लेखन समकालीन समाज की नई चुनौतियों का वर्णन है। टीवी व थियेटर आर्टिस्ट रमा पांडेय ने कहा कि वह महिला सशक्तिकरण एवं महिलाओं की पीड़ा से समाज को रूबरू कराने वाली लेखिका हैं। प्रो. विभा शर्मा ने रील देखने वाली युवा पीढ़ी को किताबें पढ़ने के लिए प्रेरित किया। डा. शगुफ्ता नियाज ने 'तेरा पत्र मिला' पर समीक्षा करते हुए पत्राचार बाकी रखने की आवश्यकता पर बल दिया। प्रो. कमरुलहुदा फरीदी ने कहा कि साहित्य में रुचि कम होने पर चिंता जताई। डा. तारिक छतारी ने विस्तार से हिंदी-उर्दू के परस्पर संबंधों पर चर्चा की। डा. मामून रशीद ने संचालन किया। डा. मुहम्मद शारिक, सुशील अंसल, विनोद सहगल एवं सुबोध सहगल आदि उपस्थित रहे।

अलीगढ़ विश्वविद्यालय में डॉ. कुसुम अंसल का भव्य स्वागत समारोह एवं पुस्तक- 'तेरा पत्र मिला का विमोचन

लेखक केवल समाज का दर्पण नहीं, मार्गदर्शक भी : प्रो. पीबी

अमर उजाला ब्यूरो

डॉ. कुसुम अंसल की पुस्तक का विमोचन करते प्रो. पीपी शर्मा व अन्य। संवाद

अलीगढ़। एमिटी यूनिवर्सिटी के कुलपति प्रो. पीबी शर्मा ने कहा कि लेखक केवल समाज का दर्पण नहीं, बल्कि मार्गदर्शक भी होता है। मंगलवार को एएमयू के उर्दू विभाग में हिंदी की लेखिका डॉ. कुसुम अंसल के नए उपन्यास "तेरा पत्र मिला" के विमोचन कार्यक्रम में उन्होंने यह बात कही।

उन्होंने कहा कि तकनीकी युग में हम सब पर साहित्य को जिंदा रखने की जिम्मेदारी है। लेखिका डॉ. कुसुम ने कहा कि एएमयू की छात्रा होने के नाते अलीगढ़ की संस्कृति उनकी कलम ही नहीं, बल्कि उनके जीवन का हिस्सा है। उन्होंने अलीगढ़ नुमाइश पर स्वरचित कविता प्रस्तुत की। उन्होंने कहा कि हिंदी को लेकर युवाओं की दिलचस्पी बढ़ रही है। अब तक उनके सात उपन्यास, 5 कविता संग्रह, 5 कहानी संग्रह, 3 यात्रा वृतांत प्रकाशित हो चुके हैं। उन्हें साहित्य एकेडमी पुरस्कार, भारत भारती, महादेवी पुरस्कार, साहित्य भूषण आदि पुरस्कार मिल चुके हैं।

आसिफ आजमी ने कहा कि साहित्य वही जीवित और प्रासंगिक रहता है जो मिट्टी और जीवन से जुड़ा होता है। टीवी कलाकार रमा पांडेय ने कहा कि कुसुम अंसल स्त्री विमर्श से बढ़कर महिला सशक्तीकरण एवं महिलाओं की पीड़ाओं से समाज को रूबरू कराने वाली लेखिका हैं। प्रो. विभा शर्मा ने रील देखने वाली युवा पीढ़ी को किताबें पढ़ने के लिए प्रेरित किया। उर्दू विभागाध्यक्ष प्रो. कमरुल हुदा फरीदी ने साहित्य में रुचि कम होने पर चिंता जताई।

वर्तमान युग में साहित्य को जिंदा रखना सबका कर्तव्य : एमिटी वीसी

एएमयू के उर्दू विभाग में कुसुम अंसल की पुस्तक 'तेरा पत्र मिला' का विमोचन

अलीगढ़, कार्यालय संवाददाता। एमिटी विवि के वीसी प्रो. पीबी शर्मा ने कहा कि लेखक समाज का दर्पण नहीं, मार्गदर्शक है। टेक्नोलॉजी के युग में साहित्य को जिंदा रखना सभी का कर्तव्य है।

एएमयू के उर्दू विभाग में मंगलवार को सांस्कृतिक संस्था आइडिया कम्युनिकेशन्स के तत्वाधान में आयोजित साहित्यिक गोष्ठी में लेखिका कुसुम अंसल के उपन्यास ह्यतेरा पत्र मिलाह्न के विमोचन किया गया। इस मौके पर बतौर मुख्य अतिथि एमिटी वीसी ने कहा कि यह उपन्यास पत्रात्मक शैली में लिखा गया है जो नयापन प्रस्तुत करता है। कुसुम अब तक 32 किताबें लिख चुकी हैं। उन्होंने कहा कि कुसुम की रचना ,पंचवटी, पर बॉलीवुड में फिल्म भी बन चुकी है। यही नहीं ,पंचवटी, पांच साल तक महाराष्ट्र के पाठ्यक्रम में शामिल भी रही। लेखिका कुसुम ने कहा कि अलीगढ़ की संस्कृति उनकी कलम ही नहीं, अपितु जीवन का हिस्सा है। इस मौके पर उन्होंने अलीगढ़ नुमाइश पर लिखी कविता भी सुनाई। लेखक व आइडिया कम्युनिकेशन्स के चेयरमैन आसिफ़ आज़मी ने कहा कि साहित्य वहीं जीवित और प्रासंगिक रहता है जो मिट्टी और जीवन से जुड़ा होता है। आत्मा और अंतर्मन की पीढ़ियों का युग बीत चुका है। उन्होंने कहा कि कुसुम का लेखन समकालीन समाज की नई चुनौतियों का वर्णन है।

एएमयू के उर्दू विभाग में मंगलवार को आयोजित कार्यक्रम में डॉ कुसुम अंसल की पुस्तक तेरा पत्र मिला का विमोचन करते मुख्य अतिथि एमिटी विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो पीबी शर्मा, आइडिया कम्युनिकेशन के डायरेक्टर आसिफ आजमी, टीवी कलाकार रमा पांडे, सुशील अंसल व अन्य । • हिन्दुस्तान

महिलाओं की पीड़ा को उजागर किया : रमा पांडेय

अलीगढ़, कार्यालय संवाददाता। थियेटर आर्टिस्ट रमा पांडेय ने कहा कि ,तेरा पत्र मिला, स्त्री विमर्श से बढ़कर महिला सशक्तिकरण एवं महिलाओं की पीड़ा से समाज को रूबरू कराने वाला है। प्रो. विभा शर्मा ने रील देखने वाली युवा पीढ़ी को किताबें पढ़ने के लिए प्रेरित किया। डा. फ़रीदी ने साहित्य में रुचि कम होने पर चिंता जताई। डा. तारिक़ छतारी ने विस्तार से हिंदी-उर्दू के परस्पर संबंधों पर चर्चा की। प्रो. मोहम्मद अली जौहर ने सभी का आभार प्रकट किया। इस अवसर पर सुशील अंसल, विनोद सहगल एवं सुबोध सहगल व छात्र छात्राएं मौजूद रहे।

आज सरकारी दफ्तरों तक सीमित है पत्रः डॉ. शगुफ़्ताः डॉ. शगुफ़्ता नियाज़ ने कहा कि पत्रात्मक शैली पर लिखा यह उपन्यास साहित्यिक पुरस्कार प्राप्त ,नाला सोपारा, के बाद दूसरा होगा। आज पत्र सरकारी दफ्तरों तक सीमित रह गए हैं। उन्होंने कहा कि इस पुस्तक में स्त्री की विधा, अस्तित्व के लिए संघर्ष, अपनी सहेली से पत्र के माध्यम से संवाद को बेहतरीन शब्दों में लिखा गया है। यही नहीं कोरोना महामारी के दौरान उपन्यास की किरदार गौरिका की 35 वर्ष की उम्र में मौत हो जाती है।

एएमयू के उर्दू विभाग में मंगलवार को आयोजित डॉ कुसुम अंसल की पुस्तक तेरा पत्र मिला के विमोचन कार्यक्रम में मौजूद प्रोफेसर व छात्र छात्राएं । • हिन्दुस्तान

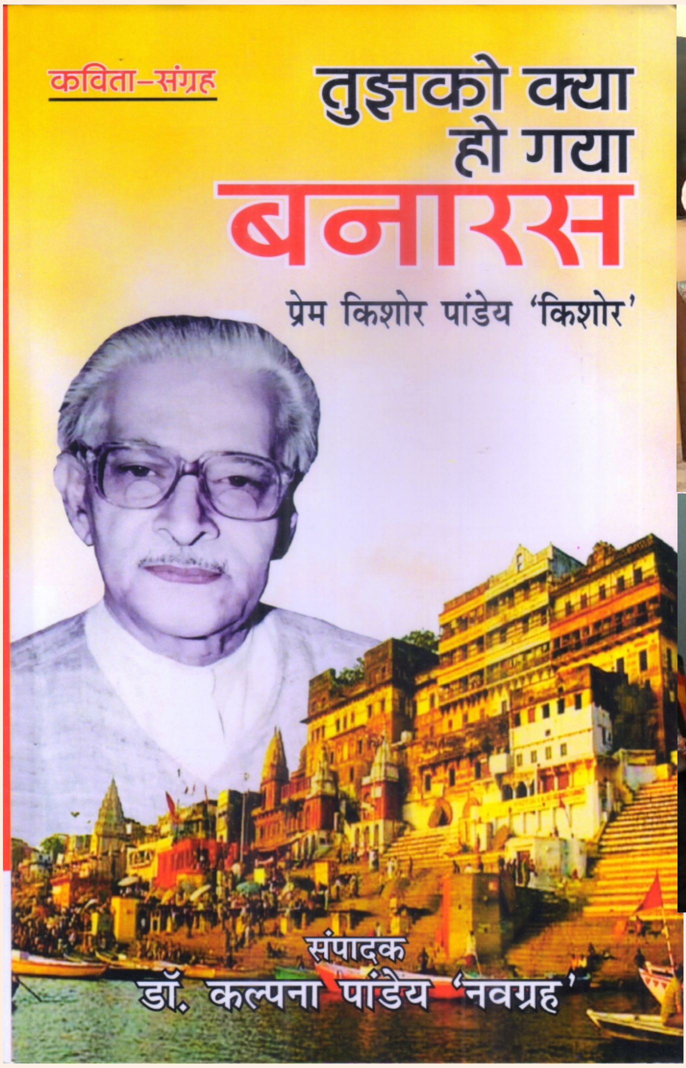

"तुझको क्या हो गया बनारस "का अंतरराष्ट्रीय विभूतियों ने किया भव्य अनावरण

नोएडा। विद्या- प्रेम संस्कृति न्यास के तत्वावधान में स्मृति शेष श्री प्रेम किशोर पाण्डेय की पुस्तक एवं डॉक्टर कल्पना पाण्डेय द्वारा संपादित 'तुझको क्या हो गया बनारस' का शानदार अनावरण अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिनाम विभूतियों ने भव्य समारोह में किया। नोएडा सेक्टर 112 में स्थित प्रतिबिंब में विक्रमशिला हिंदी विद्या पीठ भागलपुर के कुलपति श्री रामजन्म मिश्र के विशेष सानिध्य में आयोजित इस अनावरण समारोह के मुख्य अतिथि के रूप में वर्ल्ड रिकॉर्ड होल्डर, अंतरराष्ट्रीय लेखक, पत्रकार डॉ. शंभू पंवार उपस्थित रहे एवं अध्यक्षता इंडिया नेट बुक्स के अध्यक्ष डॉ. संजीव कुमार ने की। वही लोकार्पणकर्ता के रूपमें प्रतिष्ठित पत्रिका 'अभिनव ह्यूरोज' के संपादक देवेंद्र बहल,स्वर्गीय श्री प्रेम किशोर पांडेय की धर्मपत्नी श्रीमती विद्या पांडेय जी की गरिमामयी उपस्थिति रही। मुख्य वक्ता के रूप में अंतरराष्ट्रीय ख्यातिनाम साहित्यकार लेखिका डॉ.सविता चड्ढा एवं प्रख्यात कवि, व्यंग्यकार एवं पत्रकार पंडित सुरेश नीरव, नारायणी साहित्य अकादमी की अध्यक्ष डॉ. पुष्पा सिंह मौजूद रहे।तथा विशिष्ट अतिथि प्रणेता साहित्य न्यास के संरक्षक एस.जी.एस सिसोदिया, ककसाड़ पत्रिका की संपादक श्रीमती कुसुम लता सिंह रहे। कार्यक्रम का संचालन शिक्षाविद् एवं वरिष्ठ साहित्यकार डॉक्टर कल्पना पाण्डेय ने किया।अतिथियों का स्वागत डॉक्टर आर के सिंह ने किया।

डॉ. शंभू पंवार, (विश्व रिकार्ड धारक) अंतरराष्ट्रीय, लेखक, पत्रकार-विचारक

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक देवेन्द्र कुमार बहल द्वारा डेकोरपैक इंडिया प्रा. लि., 291डी, सेक्टर 6, आई.एम.टी., मानेसर, गुड़गाँव (हरियाणा) से मुद्रित, बी-3/3223, वसंतकुंज, नई दिल्ली 110070 से प्रकाशित किया । -संपादक : देवेन्द्र कुमार बहल

बीते शाम जब सारी दुनिया करवा चौथ त्योहार के आनंद में डूबी हुई थी, तब गुजरात की व्यवसायिक राजधानी गाँधीधाम ने शारदे की उपासना की। भारत विकास परिषद द्वारा आयोजित पुस्तक मेले में दुनिया भर की किताबें अधिकांश भाषाओं में उपलब्ध रहीं। इस महोत्सव का हिस्सा बनना मेरे लिए गौरव का विषय हैं। धन्यवाद॥ भारत विकास परिषद॥ प्रस्तुति : एकता अमित व्यास